त्रिलोचन कविराज

हास्यरसकी सात कहानियाँ

लेखक

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ मैत्र

अनुवादक

ब्रजमोहन वर्मा

विशाल भारत बुक-डिपो

१६५।१, हरिसन रोड, कलकत्ता

प्रकाशक—अयोध्या सिंह
विशाल भारत बुक-डिपो
१९५।१, हरिसन रोड, कलकत्ता

मूल्य डेढ़ रुपया
१९३६

Printed by M. C. Das
at the Prabasi Press
120-2, Upper Circular Road,
Calcutta.

सूची

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ मैत्रकी अन्य पुस्तकें जो शीघ्र ही प्रकाशित होंगी

थर्ड-क्लास—कहानियोंका संग्रह

मानमयी गर्ल्स-स्कूल—नाटक

जय-पराजय—कहानियोंका संग्रह

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ मैत्र

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ मैत्र उन ज्योतिपुंज नक्षत्रोंमें से थे, जिन्होंने उदय होते ही बँगलाके साहित्याकाशको अपने प्रकाशसे आलोकित कर दिया था ; किन्तु जो पूर्ण विकास तक पहुँचनेके पहले ही प्रतिभाकी एक अमर रेखा छोड़कर विलीयमान हो गये। कृपण नियतिने रवि मैत्रको केवल पैंतीस वर्षकी आयु दी थी, जिसका अधिकांश भाग बाल्यकाल, किशोरावस्था और छात्र-जीवनमें ही निकल गया ; कर्म-जीवनके उन्हें कुल-जमा दस-बारह वर्ष ही मिल पाये। इस अल्प कालमें ही उन्होंने किन-किन दिशाओंमें, कैसे-कैसे विभिन्न क्षेत्रोंमें, कितना-कितना काम किया, यह देखकर आश्चर्य होता है।

रवीन्द्र मैत्रका जन्म रंगपुरमें सन् १८९५ के लगभग हुआ था। उनके पुरखोंका आदि निवास फरीदपुर ज़िलेके एक गाँवमें था। रवीन्द्रके पिता स्वर्गीय प्रियनाथ मैत्र ढाई वर्षकी अवस्थामें ही पितृहीन हो गये थे। उनका पालन उनके मामाने किया था। पिताके न रहनेसे प्रियनाथको एन्ट्रेन्स पास करनेके बाद ही जीविकाकी चिन्ता और घर-गिरस्तीका भार सम्हालना पड़ा। उन्होंने सरकारी नौकरी कर ली और धीरे-धीरे बढ़कर रंगपुरमें कलेक्टरके सरिश्तेदार हो गये थे। रवीन्द्रका जन्म रविवारको हुआ था, इसीलिए उनका नाम रवीन्द्रनाथ रखा गया। रवीन्द्रनाथ बचपनसे ही बड़े

मेधावी थे। अक्षर-ज्ञान होनेके साथ ही वे माकी रामायण लेकर पढ़नेकी कोशिश करने लगे थे। संयुक्ताक्षर और मात्राएँ आ पड़नेपर मासे पूछकर उच्चारण मालूम कर लेते थे। उनकी स्मरणशक्ति बहुत तेज़ थी, दूसरी बार बतलानेकी ज़रूरत न होती थी। छै वर्षकी उम्रमें रवीन्द्रनाथ पाठशालामें बिठाये गये। उसकी पढ़ाई समाप्त करके वे ज़िला स्कूलमें भर्ती हुए।

ज़िला स्कूलमें पढ़ते समय रवीन्द्रके दूसरे भाई स्वर्गीय प्रकाशचन्द्र मैलेरियासे बीमार होकर इलाजके लिए कलकत्ते लाये गये। माके साथ रवीन्द्र भी कलकत्ते आये। कलकत्तेमें जब कोई फायदा न हुआ, तो आब-हवा बदलनेके लिए सारा परिवार देवघर गया। देवघरमें मैत्र परिवारको सात महीने रहना पड़ा। पिताने रवीन्द्रको देवघरके हाई स्कूलमें भर्ती करा दिया। नया स्कूल, नई पुस्तकें और बहुत थोड़ा समय होनेपर भी रविने सालाना परीक्षा पास ही नहीं की, बल्कि दर्जेमें अव्वल भी हुए। रवीन्द्रके पिता मास्टर रखकर लड़कोंको पढ़ानेके खिलाफ थे। वे अपने बच्चोंको—अपने बच्चोंको ही नहीं, दूसरोंके लड़कोंको भी—स्वयं ही पढ़ाते थे। पिताका यह गुण रवीन्द्रमें भी आया था, और उन्होंने निस्स्वार्थ भावसे अनेकों हिन्दू-मुसलमान छात्रोंको पढ़ानेमें बहुत काफ़ी परिश्रम किया था।

देवघर छोटा-नागपुरमें एक पहाड़ी स्थान है। वहाँके प्राकृतिक दृश्य सुन्दर हैं, और उसके आसपास छोटा-नागपुरकी आदिम जातियाँ—सन्थाल आदि—बसी हुई हैं। यहींपर पहले-पहले बालक रवीन्द्रका परिचय प्रकृतिसे हुआ था, और यहींपर पहले-पहल आदिम जातियोंके सम्पर्कने उनपर प्रभाव डाला था। आगे चलकर उन्होंने अपना जीवन इन्हीं आदिम जातियोंकी सेवामें लगा दिया था।

देवघरसे लौटकर रवीन्द्र अपने बड़े भाईके पास सैयदपुर आये। यहीं पर प्रकाशचन्द्रकी मृत्यु हुई। पुत्रकी मृत्युके बाद उनके पिताने पेंनशन ले ली और फ़ाज़िलपुरमें रहने लगे। रवीन्द्रनाथ स्थानीय हाई स्कूलमें पढ़ने लगे। यह ज़माना बंग-भंग-आन्दोलनका ज़माना था। बंगालके गाँव-गाँवमें इसकी लहर फैली थी। बालक रवीन्द्रनाथ भी अपने संगी-साथियोंके साथ सभाएँ करके, व्याख्यान देकर और निबन्ध तथा कविताएँ रचकर आसपासके ग्रामोंमें राष्ट्रीयताका प्रचार करने लगे। बस, यहींसे रवीन्द्रके हृदयमें साहित्य-प्रेम और समाज-सेवाका बीज जमा।

उन्होंने अपनी माता उमादेवीके नामसे नवयुवकोंके लिए 'उमा-ग्रन्थशाला' नामक एक पुस्तकालय खोला। पुस्तकें पढ़नेकी प्रवृत्ति उनमें बहुत प्रबल थी। स्कूल-जीवनमें ही उन्होंने मेघदूत, कुमारसम्भव, गीता और कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके अनेकों ग्रन्थ पढ़कर उनके बहुतसे अंश कंठस्थ कर लिये थे। संस्कृतका उन्हें अच्छा ज्ञान था, और संस्कृतमें उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी थी।

प्रथम श्रेणीमें मैट्रिकुलेशन पास करके रवीन्द्र मैत्र कलकत्ते आये, जहाँ उन्होंने बंगवासी कालेजसे आई० ए० और सन् १९१७में 'आनर्स' के साथ बी० ए० पास किया। बी० ए० की परीक्षा देनेके बाद ही उनका विवाह श्रीमती हरिबाला देवीके साथ हुआ। सन् १९१८ में रवीन्द्रके पिताका बहुत थोड़ी बीमारीके बाद देहान्त हो गया। उस समय रवीन्द्रनाथ कलकत्तेमें थे। पिताकी बीमारीका तार पाते ही वे घर गये; किन्तु उनके पहुँचनेके पहले ही पिता इस लोकको छोड़ चुके थे। पिताको अन्तिम समय न देख सकनेका दुख भावुक रवीन्द्रको जीवन-भर रहा। बी० ए०

पास करनेके बाद वे एम० ए० और क़ानून पढ़नेके लिए कलकत्ता-यूनिवर्सिटीमें भर्ती हुए। क़ानूनकी प्राथमिक (Preliminary) परीक्षा भी पास कर ली; लेकिन अन्तिम (Final) परीक्षाके पहले ही वे पढ़ना-लिखना छोड़कर सन् १९२० के असहयोग-आन्दोलनमें कूद पड़े।

उन्होंने रंगपुरको अपना कर्म-क्षेत्र बनाया। वहाँ वे कई वर्ष तक बराबर काम करते रहे। रंगपुरसे उनका और उनके पिताका सम्बन्ध छूटे हुए दस-बारह वर्ष हो चुके थे; वे कालेजसे ताज़े निकले हुए, एकदम कच्चे, नवयुवक थे; उन्हें सार्वजनिक जीवनका अनुभव भी न था; और न तो पासमें पैसा था और न बड़े आदमियोंमें प्रभाव। इतना सब होनेपर भी रवीन्द्रनाथने काम आरम्भ करके अपनी ईमानदारी, लगन और सेवासे शीघ्र ही रंगपुरके लोगोंमें—विशेषकर नवयुवकोंमें—लोकप्रियता प्राप्त कर ली। कुछ दिन बाद उन्होंने स्थानीय राजनीति (Local Politics) में भी भाग लेना शुरू किया। वे निर्वाचित होकर कई वर्ष तक रंगपुर-म्यूनिसिपल बोर्डके मेम्बर भी रहे थे। बाहरसे नये आये हुए एक नवयुवकका थोड़े ही समयमें म्यूनिसिपल कमिश्नर निर्वाचित होना—शहरके पुराने खुर्राटोंके मुक़ाबलेमें—उसकी लोकप्रियता और कार्य-पद्धतिकी सफलताका प्रमाण है। वे बँगलाके अच्छे वक्ता भी थे। एक सार्वजनिक कार्यकर्ताके रूपमें रवीन्द्रनाथ मैत्रका कार्य अनेक क्षेत्रोंमें, अनेक दिशाओंमें व्यापक था।

कभी वे कांग्रेसका प्रचार करते नज़र आते, कभी किसी विद्यार्थीकी पढ़ाईका प्रबन्ध करते घूमते, कभी किसी अत्याचार-पीड़ित स्त्रीके उद्धारके लिए दिन-रात एक करते दीख पड़ते, कभी आदिम जातियोंकी उन्नतिकी स्कीमें बनाते और उनका संगठन करते, कभी हिन्दी-प्रचारके लिए दौरा करते,

कभी साहित्य-सृजनमें व्यस्त रहते और कभी 'बाउल' साधुओंके मेलोंमें दिन-रात साधुओंके साथ घूम-घूमकर 'बाउल' गान सुनते, उनका अध्ययन और संग्रह करते।

रवीन्द्र मैत्रका सारा कर्म-जीवन एक तूफ़ानी जीवन था। तूफ़ानकी तरह आज यहाँ, कल वहाँ, आज इस काममें, कल उस काममें, कभी रंगपुर, कभी कलकत्ते, कभी घर, कभी देहातमें घूमते हुए ही उनका जीवन बीता। उनमें तूफ़ान-जैसा वेग, तूफ़ान-जैसी चपलता और तूफ़ान-जैसी अदम्य शक्ति भी थी।

रवीन्द्रनाथ अपने सम्बन्धमें कुछ कहनेमें बहुत संकोच करते थे। यही कारण है कि कलकत्तेके उनके घनिष्ठ साहित्यक मित्र और बन्धु-बान्धव भी कार्यकर्ता रवीन्द्रकी बातोंसे विशेष परिचित नहीं। रंगपुरमें कुछ वर्ष काम करनेके बाद रवीन्द्रनाथने धीरे-धीरे आदिम जातियोंकी समस्या अपने हाथमें ली। अब उनका कार्य-क्षेत्र शहरसे हटकर कटिहार और पुर्णियाके सन्थालों और ओराओं जातिके ग्रामोंमें, रंगपुरकी राजवंशी जातिकी बस्तियोंमें और आसामकी ओरकी पहाड़ी जातियोंकी कुटियोंमें जा पहुँचा। वे इन लोगोंमें जाते, उनके बीचमें रहते, उनसे बराबरीसे मिलते-जुलते और उनकी सेवा करके उनका स्नेह और विश्वास प्राप्त करते थे। हमारी यूनिवर्सिटियोंके ग्रेजुएट बड़े शहरोंको छोड़कर छोटे क़स्बोंमें भी रहना पसन्द नहीं करते; उनके लिए तो यह कल्पना भी दुस्तर होगी कि यूनिवर्सिटीका कोई 'आनर्स' ग्रेजुएट और उत्कृष्ट लेखक जंगलोंमें जाकर जंगली आदिम जातियोंके बीचमें रहे।

ओराओं नामक आदिम जातिके प्रायः अधिकांश व्यक्ति मिशिनरियोंके प्रभावमें ईसाई हो गये हैं। रवीन्द्रनाथ मैत्रने ओराओंकी बस्तीमें एक

केन्द्र खोलकर उनमें से कई व्यक्तियोंको पुनः हिन्दू-धर्ममें दीक्षित किया था। उन्होंने उन्हें शुद्ध करके उनका एक बड़ा उपनिवेश बसानेकी योजना भी बनाई थी। इसके लिए ढाई हज़ार बीघे ज़मीन ठेकेपर लेनेका प्रबन्ध भी किया था। उन लोगोंकी 'कुख' बोली भी सीखी थी। उनके लिए उन्हींकी भाषामें एक धार्मिक पुस्तक लिखनेका विचार भी किया था। किन्तु मृत्युने उनकी योजना पूरी न होने दी।

साहित्यक रवीन्द्र और कार्यकर्ता रवीन्द्रसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था—मानव रवीन्द्र। एक छोटी-सी घटनासे रवीन्द्रनाथकी मानवताका आभास मिल सकता है। श्री कृष्णधन देने लिखा है—"एक दिन सारे दिन वर्षा होकर शामको कुछ थमी थी, मैं उस वक्त घूमनेके लिए निकला। कार्नवालिस स्ट्रीटपर देखा कि दूसरे फुट-पाथपर रवीन्द्रनाथ भागते चले जा रहे हैं। उन्हें पुकारा। दौड़ते हुए आकर उन्होंने कहा—'भाई, बड़ी मुसीबतमें पड़ गया हूँ। आज ही रातकी ट्रेनसे जा रहा हूँ। ओराओंकी बस्तीमें हैज़ा फैल रहा है। वहाँ कोई डाक्टर है नहीं। दवा-दारू इकट्ठा करके लिए जा रहा हूँ।' मालूम हुआ कि दिन-भर दवा-दारू इकट्ठा करनेमें रवीन्द्रनाथ भींगते फिरे थे!"

रवीन्द्रनाथ हिन्दीके बड़े प्रेमी थे। उन्होंने स्वयं मेहनत करके हिन्दी सीखी थी तथा अपने तमाम साहित्यिक मित्रोंसे हिन्दी सीखनेका आग्रह किया करते थे। इतना ही नहीं, बल्कि हिन्दी-प्रचारके लिए उन्होंने श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोसके साथ रंगपुरके देहातोंमें दौरा भी किया था। उन्होंने फ्रेंच और इटेलियन भाषाएँ सीखनेकी भी कोशिश की थी।

कुछ लोगोंका जन्म अपने लिए होता ही नहीं। रवीन्द्र मैत्र उन्हींमें से थे।

उन्होंने अपने या अपने परिवारके लिए कभी कोई आर्थिक प्रयत्न नहीं किया। लेखों, पुस्तकों या अन्य छोटे-मोटे कामोंसे जो-कुछ मिल जाता था, उसीसे गुज़र करके अपना सारा समय सार्वजनिक कार्योंमें लगाते थे।

मुझे रवीन्द्र मैत्रको देखनेका कई बार अवसर मिला था। शक्ल देखकर जल्दी कोई यह विश्वास न करता कि यह शख्स पढ़ा-लिखा, उच्चकोटिका विद्वान है। एक अजीब व्यक्तित्व था। रूखे बिखरे हुए बाल, खद्दरका कुर्ता—जिसमें कभी बटन हैं, कभी नदारद—खद्दरकी धोती और पैरोंमें चट्टी। डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जीके शब्दोंमें 'फैशनेबिल शिक्षित समाजमें बैठे हुए रवीन्द्र मैत्र विद्रोहकी साक्षात मूर्ति-से दीख पड़ते थे।' इस अस्त-व्यस्त व्यक्तित्वमें आकर्षणका एक बड़ा केन्द्र था, वह था रवीन्द्रनाथकी दोनों आँखें। मैंने ऐसी आकर्षक आँखें नहीं देखीं। बड़ी-बड़ी लाल आँखोंमें अत्यन्त पैनी दृष्टिके साथ-साथ बालकों-जैसे भोलेपनका एक विचित्र मिश्रण था। उन आँखोंको देखकर ही जान पड़ता था कि यह रूखा-सूखा उखड़ा हुआ-सा व्यक्ति कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। उनके-जैसा उन्मुक्त और सरल हास्य भी कम देखनेको मिलेगा।

मैक्सिम गोर्कीके व्यक्तित्वकी विशेषता यह बताई जाती है कि उनमें 'अपने-आपके प्रति लापरवाह' रहनेका विचित्र भाव था। गोर्की कहता भी था, 'नवीन युगका नेता वह समाज होगा, जिसे हम आज अपने-आपके प्रति लापरवाह-सा देखते हैं।' रवीन्द्रनाथ मैत्र इस तरहकी आकर्षक लापरवाहीकी चलती-फिरती मूर्ति थे। उनकी बात-चीतसे ही उनमें शक्ति और स्फूर्ति छलकती जान पड़ती थी।

छात्र-जीवनमें कलकत्ते आनेके बाद ही उनका परिचय बँगलाके सुप्रसिद्ध

नाटककार स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायसे हुआ। राय महाशयने इस छात्रकी प्रतिभा देखकर उसे बहुत प्रोत्साहन दिया था। रवीन्द्रनाथ मैत्रके उस समयके लिखे हुए 'हम्मीर' और 'गंगाराव' नामक नाटकोंमें द्विजेन्द्रलाल रायका प्रभाव स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है।

रंगपुरमें काम करते समयसे ही मैत्र महाशय बराबर "आनन्दबाज़ार पत्रिका," "शनिवारेर चिट्ठी" आदि पत्रोंमें लेख लिखने लगे थे। रंगपुर म्यूनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्डके निर्वाचनके समय मैत्रने रंगपुरसे "वार्ता" नामक एक पत्र भी निकाला था।

रवीन्द्र मैत्रकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने गल्प, उपन्यास, कविता, व्यंग, हास्य और नाटक आदि विभिन्न विषयोंपर क़लम चलाया और प्रत्येक क्षेत्रमें सफलता पाई। उनके नाटक ऐसे हैं, जो रंगमंचपर खेले जा सकते हैं। उनके "मानमयी गर्ल्स स्कूल" नामक नाटकका बँगला फिल्म कलकत्तेमें लगातार बाईस हफ़्ते चला था!

रवीन्द्रनाथकी रचनाओंमें हमें एक प्रकारका ओज और एक प्रकारकी दृढ़ता दिखलाई पड़ती है। श्रीयुत जवाहलाल नेहरूका यह कथन बिलकुल ठीक है कि जब तक हमारा साहित्य साधारण जनताके घनिष्ट सम्पर्कमें न आयेगा, तब तक उसमें दृढ़ता और शक्ति नहीं आ सकती। प्रिन्स क्रोपाटकिनने उच्चकोटिके साहित्य-सृजनके लिए जो आवश्यक बातें बतलाई हैं, उनमें प्रकृतिका निकटत्व और सर्वसाधारण जनताका सम्पर्क अत्यन्त आवश्यक बतलाया है। रवीन्द्रनाथको देहातोंमें घूमनेका मौक़ा खूब मिला था। उन्होंने सन्थालों और ओराओं आदि आदिम जातियोंमें भी काम किया था। यह आदिम जातियाँ सभ्यताकी दृष्टिसे भारतकी अन्य जातियोंसे कितनी ही पिछड़ी

हुई हों ; किन्तु जहाँपर मानव और प्रकृतिके सम्बन्धका प्रश्न है, वहाँपर ये आदिम जातियाँ देशकी अन्य सब जातियोंमें अग्रणी हैं। अतः इन जातियोंके सम्पर्कमें आकर मैत्रको आदि-मानवको—सभ्यता और आडम्बरकी शृङ्खलाओंसे सर्वथा मुक्त मानवको—अध्ययन करनेका अवसर मिला था। सम्भव है कि मैत्रकी रचनाओंके ओज और दृढ़ताका कारण उनका प्रकृत मानवका सम्पर्क ही हो।

रवीन्द्रनाथ मैत्र बहुत दिनों तक समाचारपत्रोंमें 'दिवाकर शर्मा' के नामसे हास्य लिखा करते थे। प्रस्तुत पुस्तक उनकी हास्यरसकी सात कहानियोंका संग्रह है। पहली कहानी 'त्रिलोचन कविराज' में 'प्रेम-व्याधि' के एक चिकित्सककी कल्पना की गई है। उर्दूके कवियोंने 'मर्ज़े-इश्क' को लाइलाज बताया है, और कहा है कि इसकी दवा मसीहाके पास भी नहीं है :—

"जब मसीहासे न अच्छे हो सके बीमारे-इश्क,
होके खिसियाने सभोंको संखिया देने लगे!"

किन्तु मैत्रने अपनी कल्पनासे एक ऐसे वैद्यराजकी रसपूर्ण सृष्टि की है, जो इस मर्ज़के 'स्पेशलिस्ट' हैं। 'आल स्टार ट्रेजेडी' में आजकलके सिनेमाके पीछे दीवाने बने फिरनेवाले युवकोंका खाका खींचा गया है। 'नारी निर्यातन' कालेजोंकी सहशिक्षा-प्रणालीका सरस चित्र है। 'ज्वार-भाटा' में पारिवारिक जीवनकी एक जीती-जागती तसवीर है। इसमें मैत्रकी तीव्र निरीक्षक दृष्टि और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययनका अच्छा परिचय मिलता है। देशकी उन्नति करनेके जोशमें अनुभवहीन शहराती नवयुवक किस प्रकारके ऊट-पटाँग काम करते हैं, इसका सजीव चित्र 'समाज-सुधारक' में मिलेगा। किसी प्रसिद्ध

आदमीसे अपनी जान-पहचान और आत्मीयता प्रकट करनेकी मनुष्यकी कमज़ोरीका मज़ेदार चित्रण 'एक आधुनिक गल्प' में मिलता है। यौवनके आरम्भमें आदमी कितना अन्धा हो जाता है, इसका कौतुक-भरा वर्णन 'अन्तिम पृष्ठ' नामक गल्पमें किया गया है।

अपने विरचित पात्रोंके साथ रवीन्द्रनाथकी बड़ी गहरी सहानुभूति है। पात्रोंकी रचना करते समय वे अपने-आपको पात्रोंके व्यक्तित्वमें मिला देते थे। कई बार देखा गया था कि मित्रोंको अपनी कहानी सुनाते समय पात्र-पात्रियोंकी व्यथासे वे स्वयं ही रो पड़े! पात्रोंके साथ उनकी यह एकता ही उनके पात्रोंके व्यक्तित्वमें जान डाल देती है।

संसारके साहित्यमें बहुधा हम देखते हैं कि हास्य-रचनाओंके पात्र प्रायः इतने अधिक काल्पनिक हो जाते हैं कि वे वास्तविकतासे बहुत दूर जा पड़ते हैं। रवीन्द्रनाथकी इन हास्य-रचनाओंके पात्र इस दोषसे सर्वथा मुक्त न भी हों, फिर भी वे अत्यधिक जीते-जागते दीख पड़ते हैं। कहीं-कहींपर तो वे इतने सजीव हैं कि हमींमें से निकले हुए जान पड़ते हैं। यही रवीन्द्रनाथकी कलाका और सफलताका प्रमाण है।

कृष्णाष्टमी, १९९३] —व्रजमोहन वर्मा

❀ ❀
❀

त्रिलोचन कविराज

और कोई आवाज़ न सुनाई देती थी, सिर्फ पैरोंकी खड़ाऊँ फुट-पाथसे रगड़कर अविश्राम गतिसे, नाना प्रकारके छन्दोंमें, खटर-खट खटर-खटकी ध्वनि कर रही थी। उन्हें सुनते-सुनते मैं उद्भ्रान्त-सा होकर चल रहा था। सारा जीवन ही व्यर्थ मालूम पड़ रहा था। सवेरे 'जेन्ट्स रेस्तराँ डी लक्स'में एक पैसेकी एक प्याला चायके साथ तीन दिनकी बासी पावरोटीका एक जला हुआ टोस्ट खाया था। रह-रहकर उसीकी डकार आ रही थी। दिन-भर घर न लौटूँगा, यह संकल्प करके घरसे बाहर निकला था; लेकिन दिन कहाँ काटूँ, यह निश्चय नहीं कर सका। दो-एक जान-पहचानके मित्रोंके मकान पास ही में थे, उनके यहाँ जा सकता था; लेकिन मन-ही-मन मैं सभी बन्धु-बान्धवों और आत्मीय-स्वजनोंके प्रति इतना विरक्त हो उठा था कि उनमें से किसीके भी यहाँ जानेकी तबियत न हुई। दो-एक नौकरानियाँ बाज़ारसे सौदा-सुलुफ लेकर मेरी बग़लसे होकर निकल गईं; लेकिन मैंने उनकी तरफ मुड़कर भी न देखा। प्रतिक्षण मन सांसारिक बातोंसे अधिकाधिक विरक्त हो रहा था। उस समय यदि सारा जगत निमतल्ला या केवड़ातल्ला* बन जाता, तो भी मुझे कोई आपत्ति न होती।

---

* निमतल्ला और केवड़ातल्ला कलकत्तेके प्रसिद्ध मरघट हैं।

अचानक सड़कके किनारे एक मकानमें पुरुषोंके रोनेकी आवाज़ सुनकर चौंक पड़ा और ठिठककर खड़ा हो गया। खिड़कीसे झाँककर देखा, अनेक लोग हैं। कोई ज़ोर-ज़ोर रो रहे हैं, तो कोई रूमालसे आँखें पोछ रहे हैं। सोचा, शायद कोई मर गया है ; लेकिन दरवाज़ेपर रथी या टिकटीका कोई सामान नज़र न आया। ऊपरको नज़र दौड़ाई—देखा कि मकानके इस सिरेसे उस सिरे तक एक लम्बा साइनबोर्ड लगा है, जिसपर मोटे-मोटे सुनहरे अक्षरोंमें लिखा है—"प्रेमार्तिहरण औषधालय" ; उसके नीचे लिखा है—"श्रीत्रिलोचन कविराज"। औषधालय और कविराज दोनों ही नये जान पड़े, इसलिए कौतूहलवश खड़ा होकर देखने लगा। लेकिन फौरन ही मालूम हो गया कि मैंने भूल की—न तो कविराज ही नये हैं और न औषधालय ही, क्योंकि साइनबोर्डके सुनहरे अक्षर काले पड़ गये थे, साथ ही जिस कमरेमें रोते हुए लोग बैठे थे, उसकी बगलमें ही सड़ककी तरफ जो बड़ा हाल था, उसका सभी साज़-सामान पुराना था। यहाँ तक कि उसमें जो फर्श बिछा था, उसपर भी एक सौ एक ठिकाने स्याही और तेलके धब्बे थे। रोकड़के गल्लेके आगे भी जो सज्जन बैठे थे, वे भी बड़े पुराने जान पड़े। समझ गया कि यह कविराज महाशयकी डिस्पेंसरी है। रोकड़पर जो सज्जन बैठे थे, वे बड़े आग्रहके साथ मुझे ताक रहे थे। एकाएक उन्होंने पुकारा—"आइये, आइये, भीतर आइये !"

भीतर घुसकर फर्शपर बैठ गया। दीवारपर एक बहुत बड़े आकारका मदनभस्मका आयलपेंटिंग लटक रहा था। उसीको देखने लगा। इतनेमें उन सज्जनने कहा—"जानते हैं न, घरपर व्यवस्था लेनेकी फीस आठ रुपया है ?"

मैंने कहा—"काहेकी फीस ?"

"कविराज महाशयकी फीस। हाँ, आपकी व्याधि अवश्य ही तीन दिनमें जड़से मिट जायगी। कविराजजी साक्षात धन्वन्तरि हैं।"

मैंने विरक्त होकर कहा—"क्या आपने यही कहनेके लिए पुकारा था? मुझे कोई व्याधि-याधि नहीं।"

बुढ़ऊने कहा—"ज़रूर है। है कैसे नहीं? यह रोग जिसे न हो, ऐसा कोई पुरुष या स्त्री इस दुनियामें नहीं है, महाशयजी! राजा-रजवाड़ोंसे लेकर—"

मैंने उनकी बात पूरी न होने दी और बीचमें ही तानेसे कहा—"आप तो अन्तर्यामी जान पड़ते हैं!"

वृद्धने वैसे ही शान्तभावसे कहा—"जी हाँ, करीब-करीब। महाशय, मेरी उम्र तिरसठ वर्षकी हो चुकी, आठारह वर्षसे कविराजजीकी कम्पौन्डरी कर रहा हूँ। हर रोज़ सब मिलाकर कोई तीन सौ रोगियोंको दवा देता हूँ। वसन्तऋतुमें और बरसातमें रोगी दुगने हो जाते हैं। तीस लड़कोंको पुड़िया बाँधते-बाँधते फुर्सत नहीं मिलती। खुद ही देखता हूँ कि कविराज महाशयकी दवाके बिना किसीका काम नहीं चलता। और आप तो क्या—"

अब कुछ प्रभावमें आकर मैंने कहा—"आप किस रोगकी बात कह रहे हैं, मालूम हो तो—"

बुढ़ऊने कहा—"साइनबोर्ड नहीं देखा क्या? प्रेम और प्रणयसे उत्पन्न होनेवाली सब तरहकी व्याधियोंकी चिकित्सा यहाँ औषधि और मुष्टियोगके द्वारा की जाती है। फीस आठ रुपया, दवा मुफ्त! इससे बढ़कर सुविधा आपको और कहाँ मिलेगी?"

सिर घूमना, दिल धड़कना आदि प्रणय-जन्य बीमारियोंके नाम और उनकी अनेक तरहकी पेटेन्ट औषधियोंके विज्ञापन बड़े-बड़े मासिक पत्रों और समाचार-

पत्रोंमें बचपनसे ही देखता आता हूँ ; लेकिन आज तक मुझे उनकी ज़रूरत नहीं पड़ी। और आज यह बुढ़ऊ—

वृद्ध बोले—"क्या सोच रहे हैं ? जान पड़ता है, आप सोच रहे हैं कि आपको कोई रोग नहीं है ? कविराज महाशयसे एक बार देखादेखी होते ही आपको मालूम हो जायगा कि आपको व्याधि है या नहीं। महाशय, अभी आपकी उम्र ही क्या है ? मुझे देखिये, मैं, श्री घनश्याम रसनिधि, पाँच-पाँच स्त्रियोंको निमतल्ला घाटके पार उतार चुका हूँ ; तिरसठ वर्षकी उम्र हो चुकी है ; फिर भी अब तक बीच-बीचमें कविराज महाशयसे नुस्खा लेना पड़ता है !"

मैंने कोई प्रतिवाद नहीं किया ; लेकिन मनमें विचार हुआ कि हो सकता है, मुझमें भी कहीं-न-कहीं यह व्याधि हो। जबसे घरमें श्रीमतीजीसे लड़कर निकला था, तभीसे माथा ठनक रहा था। सोचा, मुमकिन है, यह भी कोई प्रणय-जनित रोग हो। इसके बारेमें कुछ पूछने ही वाला था कि रसनिधि महाशय बड़े सम्मानके साथ बोल उठे—"यह लीजिए, कविराज महाशय आ रहे हैं !"

दूसरे ही क्षण हाथमें हुक्केका नारियल दबाये, मोहमुद्गरका पाठ करते हुए त्रिलोचन कविराज कमरेमें दाखिल हुए। उम्र सत्तरके पार हो चुकी थी, माथेपर सामनेकी तरफ़ बालोंकी खेती नदारद थी, पीछेकी तरफ सफेद बालोंके कुछ गुच्छे उगे हुए थे, जिनमें धतूरेका एक फूल लटक रहा था। कविराज महाशयके चौड़े ललाटपर एक तीसरा नेत्र अंकित था—ठीक वैसा, जैसा रामलीलामें बननेवाले महादेवके होता है। उस नेत्रके बीचोबीच रक्तचन्दनकी अक्षतारिका—पुतली—बनी थी। फ़र्शपर बैठते ही कविराज महाशयने मेरे ऊपर दृष्टि डाली—क्यों, सो नहीं जानता—मैंने आँखें बन्द कर लीं।

उन्होंने कहा—"डरो नहीं, सब आराम हो जायगा।" बादमें हुक्केका एक कश खींचकर पुकारा—"माधो, रोगियोंको उपस्थित करो।"

कविराज महाशयका आह्वान सुनकर कईएक अल्पवयस्क शिक्षार्थी डिस्पेंसरीमें आ मौजूद हुए। उन्होंने कविराजजीको प्रणाम किया और रोगियोंके कमरेमें चले गये। मैं फ़र्शसे उठकर कुछ दूर एक स्टूलपर जा बैठा और सतृष्ण नेत्रोंसे रोगियोंके कमरेके दरवाज़ेकी ओर ताकने लगा।

रोगियोंके कमरेसे तरह-तरहके गहरे निःश्वासों और स्पष्ट-अस्पष्ट रोदनकी आवाज़ सुनाई दी। उसके बाद ही कविराजजीके छात्रोंके कंधोंपर भार दिये हुए रोगियोंने आना शुरू किया। एँ, यह क्या? ये तो प्रायः सभी मेरे परिचित हैं! रसनिधि महाशयने जो कुछ कहा था, देखता हूँ, वह झूठ नहीं है! राजनैतिक नेतासे लेकर मासिक पत्रोंके सम्पादक तक सभी तरहके व्यक्ति कविराज महाशयसे इलाज करानेके लिए आये हैं। एक विशेषता यह दीख पड़ी कि सब-के-सब रो रहे हैं; लेकिन कोई किसीकी तरफ़ देखता नहीं। अति वृद्धोंसे लेकर दस वर्षके बालक तक अपना-अपना रोग दिखलाने आये हैं। मेरे मनमें एक प्रश्न उठा। उठकर रसनिधि महाशयके कानमें चुपकेसे पूछा, तो उन्होंने कहा—"हाँ-हाँ, स्त्रियाँ भी हैं; पर वे दोतल्लेपर हैं। इन सबकी व्यवस्था हो जानेपर उनकी बारी आयेगी।"

कविराज महाशयने हुंकारसे कहा—"पहले अल्पवयस्क रोगियोंको उपस्थित करो।"

एक साथ ही पाँच-सात स्कूली लड़के आँखें पोंछते-पोंछते आकर फ़र्शपर बैठ गये। कविराज महाशयने गम्भीर स्वरसे प्रश्न किया—"परीक्षामें फेल हुए हो?"

सभीने एक स्वरसे बिसूरते हुए कहा—"हूँ !"

कविराज महाशयने और कुछ नहीं पूछा। रसनिधिकी ओर घूमकर कहा—"सवेरे 'मोहमुद्गर गुटिका' एक मात्रा ; पथ्य—उपवास।"

नुस्खे ले-लेकर और फीस दे-देकर सब लड़के आँखें पोंछते चले गये।

अब वयस्क रोगियोंने आना शुरू किया। पहले जो सज्जन आये, उन्हें मैं पहचानता न था। वे कविराजजीके सामने बैठते ही हो-हो करके रो उठे।

कविराज महाशयने पूछा—"पेशा क्या है ?"

उन भलेमानसने रोते-रोते उत्तर दिया—"पत्रिका-सम्पादक।"

"हूँ ! कविता छापी होगी ?"

"जी हाँ, उसीसे तो—"

"हूँ ! लेखिकाके पास पत्र-लेखन-कार्य किया होगा ?"

"जी। उसका जवाब पाकर ही तो—" कहकर वे फिर ज़ोरसे रो पड़े।

कविराजजीके इन अचूक निशानोंको देखकर मैं तो दंग रह गया ! कविराजजीने हाथ बढ़ाकर रोगीकी नाड़ी देखी। उसके बाद कहा—"व्यवस्था—सवेरे-शाम 'अश्रुभैरव बटी', दोपहरको स्वल्प 'प्रणयान्तक'।" फिर रोगीकी तरफ़ घूमकर बोले—"पत्रिका-सम्पादन त्याग करो।"

इसी समय एक क्षीण आर्तनाद सुनाई दिया। दूसरे ही क्षण माधोने आकर खबर दी कि दोतल्लेपर एक रोगिणीको मूर्च्छा आ गई है। त्रिलोचन कविराज उठे और नथुनोंसे एक चुटकी सुँघनी सुड़कते हुए ऊपर चले गये। यह मौक़ा देखकर मैं रसनिधि महाशयके पास जा बैठा और बोला—"यदि आप बुरा न मानें, तो—"

रसनिधि बोले—"मैं कभी बुरा नहीं मानता। पूछिये, जो पूछना हो।"

मेरे मनमें त्रिलोचन कविराजकी जीवन-कथा जाननेकी दुर्दमनीय इच्छा हो उठी थी। मैंने कहा—"आप तो कविराज महाशयको बहुत दिनोंसे जानते हैं। उनके सम्बन्धमें—"

रसनिधि बोले—"त्रिलोचन कविराजकी कथा आप नहीं जानते? अच्छा संक्षेपमें सुनिये। पचास वर्ष पहलेकी बात है। कविराज महाशय पढ़ते थे 'सिद्धान्त कौमुदी', और हम लोग पढ़ते थे 'मुग्धबोध'। अकस्मात् एक दिन गाँवकी रजकनन्दिनी 'सुन्दरिया' ने त्रिलोचन कविराजके विरुद्ध अभियोग लगाया कि त्रिलोचनने उसका अंग स्पर्श किया है। इसपर गुरुजीने उन्हें पाठशालासे विदा कर दिया। बस, तभीसे त्रिलोचन कविराजने संसार त्याग दिया। उन्होंने देश-भरमें घूम-घूमकर देखा कि जगतमें प्रेम-व्याधि ही सबसे अधिक व्यापक और घातक है। तब जीवोंके हितार्थ इस रोगकी औषधि ढूँढ़नेके लिए वे हिमालयपर गये। वहाँ सिद्ध बाबा मदनमथनजीके निकट दीक्षा ली। उन्होंने त्रिलोचनकी प्रेम-व्याधिको आराम किया। उसके बाद गुरुके आदेशसे लोगोंके हितसाधनके लिए गुरुकी दी हुई औषधि आदि लेकर वे फिर संसारमें आये और यह डिस्पेंसरी खोली। उनके छात्रों और शिष्योंमें कोई भी विवाह नहीं कर सकता; लेकिन चूँकि मेरी पैतृक वृत्ति है, इस लिए मेरे लिए उनकी व्यवस्था दूसरे ढंगकी है। यह उनकी कृपासे हो अथवा भाग्यबलसे हो, जो मैंने पाँच-पाँच स्त्रियोंके हाथोंसे उद्धार पाया। हे गुरु! तुम्हीं सत्य हो।" कहकर रसनिधि महाशयने गुरुके लिए हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

इसी समय कविराज महाशय वापस आकर फर्श पर बैठ गये। इस बार मैंने भी भक्तिसे गद्‌गद होकर उनके चरण छुए। कविराज महाशयने सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

रोगी अब भी रो रहे थे। त्रिलोचन कविराजने डाँटा—"चुप !" क्रन्दन ध्वनि थम गई। अब सिर्फ सिसकनेकी आवाज़ आने लगी।

दूसरा रोगी आकर उपस्थित हुआ। उम्र बरस पचीस ; बदनपर रंगीन कुर्ता ; आँखें रोते-रोते लाल ; सिरके बाल रूखे। फर्शपर बैठते ही उसने एक गहरा निःश्वास छोड़ा, जिससे त्रिलोचन कविराजकी खुली हुई सुँघनीदानीसे थोड़ी-सी सुँघनी उड़कर फर्शपर जा पड़ी। कविराजजीने उसे देखा। फिर रोगीकी नाड़ी देखकर कहने लगे—"रोगका विवरण कहो।"

किस प्रकार पासके मकानकी छतपर किसीको साड़ी सुखाते देखकर उनके रोगका प्रथम सूत्रपात हुआ, और फिर किस तरह एकके बाद एक अनिद्रा, अरुचि, दीर्घ निःश्वास आदि बातें प्रकट होने लगीं,—रोगी सज्जन यह सब वर्णन करने लगे। आखिरकार पिछली शामको साड़ीकी अधिकारिणी द्वारा उनके सिरपर डलिया-भर तरकारीका छीलन फेंके जानेसे उनका रोग बहुत बढ़ गया और कई नई शिकायतें पैदा हो गईं। रोगी महाशयमें कविता करनेकी ज़ोरदार प्रवृत्ति है। यह सब बतलाकर उन्होंने जेबसे केलेका एक छिलका निकालकर दीर्घ निःश्वासके साथ कविराज महाशयको दिखलाया और फिर रोकर कहा—

"उसकी स्मृतिमें रख छोड़ा, मैंने इसे समझ उपहार ;
छिलका नहीं, पुष्प है यह तो, है इसमें सौन्दर्य अपार !"

कविराजजीने उनके हाथसे छिलका लेकर उसकी परीक्षा की। फिर उसे फेंक दिया और पूछा—"हूँ ! छिलका प्रक्षेपकारिणीकी उम्र कितनी है ?"

रोगी सज्जन चीत्कारकर उठे—"सोलह—सोलह ! Sweet Sixteen !"

त्रिलोचन कविराजने डाँटकर कहा—"चुप ! व्यवस्था—'किशोरी काला-

नल' सवेरे, शामको 'दीर्घश्वासारि घृत', छातीपर मालिश। जाओ। दक्षिणकी खिड़कीपर एक मोटा पर्दा लटका देना।"

इसके बाद एकके बाद एक रोगी आने लगे। एक आश्चर्यकी बात यह देखी कि सबके सब बिना संकोचके, सभीके सामने, अपने रोगोंकी गूढ़ बातें प्रकट कर रहे थे। किसीमें लज्जाका लेशमात्र भी न था। बूढ़े अनुकूल चक्रवर्तीको मैं पहचानता था। अपनी चौथी स्त्रीसे न बननेके कारण हालमें वे अपने पड़ोसी विश्वम्भरकी प्रौढ़ा पत्नीको देखकर रोगग्रस्त हुए हैं, और और इधर विश्वम्भरजीने अनुकूल बाबूकी चौथी सहधर्मिणीको काशीवास करानेका संकल्प किया है। इसी संकल्पके फलस्वरूप उन्हें अरुचि, शिरपीड़ा आदि लक्षण दीख पड़ने लगे हैं। दोनों-के-दोनों अपने-अपने रोगोंके इस पारिवारिक गुप्त निदानकी बात एक दूसरेके सामने कह गये; उन्हें ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं हुई। यह देखकर त्रिलोचन कविराजकी आध्यात्मिक शक्तिके प्रति मेरी भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

एकके बाद एक करके रोगी आ रहे थे और दवा ले रहे थे, ज़रा भी विराम नहीं। इधर काफी वक्त हो गया है, यह देखकर मैं उठनेवाला ही था कि इतनेमें आँधीकी तरह झपटता हुआ एक व्यक्ति कमरेमें घुस आया और चीत्कार कर उठा—"प्राण गया—प्राण गया!"

मैं डरकर सिहर उठा। एँ, यह तो 'वास्तविका समिति'के अन्यतम सदस्य मिस्टर रातुल राहा हैं! रातुल राहा अपने स्वप्नराज्यसे इस वास्तविक शहरमें आ कैसे गये? कमरे भरके लोग निस्तब्ध रह गये। जो रोगी क्षणभर पहले सिसक-सिसककर लम्बी साँसे ले रहे थे, उन्होंने भी इस नये रोगीकी हालत देखकर कौतूहलके मारे साँस लेना बन्द कर दिया। त्रिलोचन कविराजने एक

बार रातुल राहाकी तरफ देखा, फिर उठकर अल्मारीसे बेलकी लकड़ीका बना हुआ स्टेथिस्कोप निकालकर रातुलकी छातीमें लगाया। रोगी चीत्कार कर उठा—"दर्द! दर्द! छाती नहीं रही कविराजजी, यह तो अब चलनी है, चलनी!"

त्रिलोचन कविराजने एक डाँट बताई, रोगी चुप हो गया। नाड़ी देखकर कविराज महाशयने कहा—"हूँ! रोग तो जटिल है।"

रातुलने हताश होकर कहा—"मिटेगा भी? या फन्देमें फँसकर—"

त्रिलोचन कविराजने ढाढ़स देते हुए कहा—"कोई डर नहीं। हाल कह जाओ।"

रोगीने कहा—"हाल अब क्या रहा? हृदयकी तो उल्टी साँस चल रही है।"

त्रिलोचन कविराजने आँखें मींचकर कहा—"हूँ! कहे जाओ।"

रातुलने कहना शुरू किया—"प्रेमने मेरे हृदयमें घोंसला बना रखा है—लड़कपनसे ही। उस घोंसलेसे हज़ारों प्रेम-पक्षी अंडे फोड़-फोड़कर निकल चुके हैं। सारा संसार घूमकर अब वे सब-के-सब फिर हृदयके पिंजड़ेमें आना चाहते हैं; लेकिन जगह नहीं है! जगह नहीं है!"—कहकर रातुल राहाने एक दीर्घ निश्वास लिया।

त्रिलोचन कविराजने भौंहें सिकोड़ते हुए कहा—"साफ-साफ कहो।"

इसपर रातुल राहाने जो कुछ कहा, उसका भावार्थ यह था कि उसने एकके बाद एक करके उन्नीस कुमारियोंसे अपना प्रेम-निवेदन किया था। बादमें निवेदितागणके अभिभावक और अभिभाविकाएँ पता पाकर राहा महाशयको उन कुमारियोंका प्रेमार्घ्य ग्रहण करनेके लिए 'वास्तविका समिति' से पकड़

लाई। नतीजा यह हुआ कि रातुलके माता-पिता अत्यन्त व्याकुल हो उठे हैं। घटक× कहते हैं कि रातुलके परदादाने एक वर्षमें इक्यावन विवाह किये थे और यथोचित मान-मर्यादा प्राप्त की थी! यह सुनकर पुरोहितजीको बड़ी खुशी हुई है, और वे पत्रा देखकर किसी आसन्न सुतहिबुक योगकी* खोज कर रहे हैं।

त्रिलोचन कविराज कुछ देर तो ध्यानमें निमग्न रहे, फिर बोले—"रोग जटिल है। इसकी नियमपूर्वक चिकित्सा होनी चाहिए।" फिर आँखें बन्द करके नुस्खा लिखाया—"सवेरे 'बृहत प्रेमांकुश-लौह' पूर्ण मात्रा और 'पुरोहित निसूदन बटी'की आधी गोली; दोपहरको 'विवाह विद्रावन रस' और शामको 'घटकाशनि' और 'खट्टांगावलेह्'। पथ्य—पहले तीन दिन लंघन, बादमें अवस्थाके अनुसार।"

नुस्खेके मुताबिक दवा लेकर जब रातुल महाशय चलने लगे, तो उनका वर्तमान हाल-चाल पूछनेके उद्देश्यसे मैं भी उठ खड़ा हुआ। त्रिलोचन कविराजने पीछेसे पुकारा—"ज़रा ठहरो।" मुड़कर देखा, तो कविराज महाशयने कहा—"तुमसे कुछ काम है।" यह सुनकर मैं बैठ गया।

लगभग एक घंटेके भीतर सब रोगी विदा हो गये। तब त्रिलोचन कविराजने मुझसे कहा—"तुम्हें आज पहले ही पहल देखा है; लेकिन तुम्हारे प्रति मेरे मनमें कुछ ममताका संचार हो उठा है, क्योंकि देखता हूँ कि तुमपर अभी तक यह रोग आक्रमण नहीं कर पाया है। यह तो तुमने स्वयं देख ही

× जो लोग वर-कन्याकी सगाई करानेका पेशा करते हैं, वे घटक कहलाते हैं।

* सुतहिबुक योग—ज्योतिषका एक योग है, जिसके होनेसे विवाहकी दोषपूर्ण लग्न भी निर्दोष हो जाती है।

लिया कि बुद्धिमान, ख्यातिवान, धनी, दरिद्र कोई भी इस कठिन प्रेम-व्याधिसे रिहाई नहीं पाता। मैं अगर तुम्हारे इस शहरमें चिकित्सालय खोलकर न बैठता तो क्या होता, यह कल्पना भी नहीं कर पाता। यौवनके आरम्भमें इस व्याधिने मुझपर बड़े भीषण रूपमें आक्रमण किया था। गुरु-दीक्षा लेकर मैंने इससे उद्धार पाया; लेकिन अब भी बीच-बीचमें तुम लोगोंके नये-नये उपन्यास और कविताएँ पढ़कर फिर दो-एक लक्षण दीख पड़ जाते हैं, इसीलिए मैंने ग्रन्थ-पाठ एकदम छोड़ दिया है। लेकिन दुःखका विषय है कि मेरे प्राणान्त चेष्टा करनेपर भी यह भयंकर संक्रामक व्याधि चारों ओर फैलती ही जाती है। तुम लोगोंको पुष्टिकर भोजन नहीं मिलता, जिससे तुम सब दुर्बल हो गये हो, जान पड़ता है, इसीलिए तुम लोगोंको यह रोग इतनी जल्दी पकड़ लेता है। पुराने समयमें जहाँ कंठालिंगन हुए बिना यह रोग नहीं होता था, वहाँ आजकल केवल एक कटाक्ष ही रोगोत्पत्तिके लिए काफी है। फिर स्कूल-कालेजोंमें और तुम लोगोंमें तो साड़ीका अंचल और चाबीका गुच्छा तक इस रोगके कीटाणु फैला देता है। सम्भव है कि भविष्यमें सिर्फ पगध्वनि सुनकर ही तुम लोगोंको मूर्च्छा आ जाय।"

मैं लज्जासे लाल हो उठा। अब भी यदि जेबमें पैसा न हो और श्रीमतीजीके आनेकी पगध्वनि सुनाई पड़े, तो मुझे मूर्च्छा आ जानेके लक्षण होने लगते हैं, यह बात मैं कविराजजीसे नहीं कह सका।

त्रिलोचन कविराजने कहा—"अच्छा, तुम आज जाओ। तुम अभी तक इस रोगसे ग्रस्त नहीं हुए, यह प्रसन्नताकी बात है। लेकिन इस व्याधि-भरे नगरमें, जहाँ लड़कियोंके स्कूलोंकी गाड़ियोंसे लेकर सिनेमाके पोस्टर तक इस भयंकर रोगके कीटाणुओंको फैलाते हैं, रोगग्रस्त होनेमें देर नहीं लगती।

सावधानका विनाश नहीं होता, इसलिए तुम इस रोगको रोकनेवाली 'मदनमर्दन वटी' और 'कटाक्षारि अंजन' ले जाओ। सप्ताहमें एक बार ठंडे पानीके साथ 'मदनमर्दन वटी' खाना और रोज़ एक बार आँखोंमें 'कटाक्षारि अंजन' लगाना। मैं और ज़्यादा ठहर नहीं सकता, ऊपर रोगिणी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

मैंने प्रणाम किया। त्रिलोचन कविराज पुनः मोहमुद्गरका पाठ करते हुए ऊपर चले गये।

बाहर निकलकर मैं लपकता हुआ सीधा गंगाजीके घाटपर पहुँचा। वहाँ चुल्लूमें गंगाजल लेकर त्रिलोचन कविराजकी दी हुई एक वटी गलेके नीचे उतारी। गोली खाते ही नारियोंकी छूत (Infection) से उत्पन्न सारी चिन्ताएँ ग़ायब हो गईं! श्रीमतीजीकी बात भी भूल गया। मनमें ऐसा जान पड़ने लगा कि इस जगतमें मैं एकदम अकेला हूँ—मेरा कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं!

सामने दुर्गतिनाशिनी गंगा कल-कलकर बहती जा रही थीं।

[इस रचनाको अख़बारमें छापते ही हम बड़ी मुसीबतमें पड़ गये। हमारे बूढ़े कम्पोज़ीटरसे लेकर दफ़्तरीका नौ वर्षका लड़का तक त्रिलोचन कविराजका पता जाननेके लिए बार-बार तंग करने लगा। यहाँ तक कि मशहूर पहलवान गंडासिंह, सम्पादन-कलाके मर्मज्ञ पं० भगवानदास शुक्ल, प्रसिद्ध इतिहास-गवेषक विजयचन्द, उपन्यासकार लाला उल्फ़त राय, पत्र-सम्पादक पं० लाडलेलाल, गान-संग्राहक सत्येन्द्र खोजार्थी, कविवर नवीनकृष्ण शर्मा और कोषकार रामेश्वर त्रिपाठी तकके पत्र आये। सभीने त्रिलोचन कविराजका पता पूछा था।

रचनामें उनका पता था नहीं, इसलिए हमने लेखक श्री दिवाकर शर्माको पत्र लिखकर त्रिलोचन कविराजका पता पूछा। उन्होंने उत्तरमें लिखा :—

"उस दिन गृहिणी द्वारा ताड़ित होकर—सारे संसारपर क्रुद्ध होकर—भूखे पेट घरसे बाहर निकला था। आखिरमें थककर अहीरिन मौसीकी खपरैलके बरामदेमें चादर बिछाकर सो रहा। निद्रित अवस्थामें त्रिलोचन कविराजको स्वप्नमें देखा और निद्रा भंग होनेपर उनका वृत्तान्त लिख डाला। यह वही रचना है। फिर भी आशा है कि स्वप्न फलेगा, क्योंकि त्रयोदशीके दिन देखा हुआ सपना सच्चा होता है। आप यही बात कहकर अपने बन्धुओंको दिलासा दें। इस बीचमें यदि पारिवारिक ताड़नाके फलस्वरूप फिर स्वप्न देखूँगा, तो त्रिलोचन कविराजसे उनका पार्थिव ठिकाना पूछ लूँगा। इति।

—दिवाकर शर्मा]

आल स्टार ट्रेजेडी

"तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि पोला नेग्री सती नहीं है?" यह कहते हुए चटकने खुले दरवाज़ेसे बैठकखानेमें प्रवेश किया।

सभी उपस्थित व्यक्ति चौंक पड़े। सर्वेश्वर घोषका चश्मा आँखोंसे खिसककर नाककी नोकपर आ रुका। जो इससे पहले खूब ज़ोर-ज़ोरसे चीत्कार कर रहे थे, वे सब चुप होकर बैठ रहे।

चटकने प्रश्नको फिर दोहराया, और कमरपर हाथ रखकर खड़ा हो गया।

संक्षेपमें मामला यह था कि कई दिनसे मकानोंकी दीवारोंपर चिपके हुए और समाचारपत्रोंके स्तम्भोंमें छपे हुए विज्ञापनोंको देखते-देखते मुहल्लेके विज्ञापन-विह्वल लोग पिछली रातको 'माडल सिनेमा' में नग्न और अर्धनग्न सुन्दरियोंके नृत्यका फिल्म देख ही आये—वयस्क दुपट्टेमें मुँह छिपाकर और नवयुवक खुले आम सिगरेट फूँकते हुए। आज सुबहसे सर्वेश्वर बाबूके बैठकेमें गत रातके चित्राभिनयकी आलोचना हो रही थी। धीरे-धीरे आलोचनाका विषय चित्रसे हटकर अभिनेत्रियोंकी उम्र, रूप, आय और चरित्र आदि पर जा पहुँचा। अन्तमें आलोचनाका चक्कर सिर्फ चरित्रके चारों ओर ही चलने लगा। कल रातमें जिन्होंने सबसे अधिक तालियाँ बजाई थीं, वे ही आज

अभिनेत्रियोंकी निर्लज्जतापर सरगर्मी दिखलाकर उनके सतीत्वपर सन्देह प्रकट कर रहे थे। इत्तफ़ाक़से चटक राहसे गुज़र रहा था। कोई मिनट-भर तो खड़ा-खड़ा सुनता रहा, फिर सर्वेश्वर बाबूके बैठकखानेमें घुस आया—उसके बाद तो पाठक जानते ही हैं।

सभामें बैठे व्यक्तियोंके सिटपिटा जानेका एक कारण था। चटक चाकी स्वर्गीय चक्रपाणि चाकीका पुत्र है। वह मुहल्लेमें सबसे अधिक पढ़ा-लिखा, यानी बी० ए० पास, और सबसे अधिक धनी है। वही मुहल्लेके बारह आना मकानोंका मालिक है। वह अविवाहित है। थियेटर और सिनेमाके सम्बन्धमें उसे अगाध ज्ञान है। पिता सारी सम्पत्ति देवताके नाम अर्पित कर गये थे, इसीलिए अभी तक वह कोई फिल्म कम्पनी नहीं खोल सका। किन्तु कम्पनी न खोलनेपर भी वह प्रतिदिन सिनेमा देखता है और हॉलीवुडकी प्रत्येक अभिनेत्रीको चिट्ठी लिखता है। तिमँज़िलेपर अपने पढ़नेके कमरेमें बड़े-बड़े शीशे टाँगकर वह वैलेन्टिनो और नोवारोकी मुख-भंगीकी नक़ल करता है, और गृहस्थीकी संचालिका यानी अपने मौसेरे भाईकी विधवा स्त्रीको अपनी इस विद्याकी परीक्षा देता है। एक दिन एक ही फिल्मको उसने एकके बाद एक करके तीन बार देखा। घर लौटकर दरवाज़ेकी चटखनी चढ़ाई और रुडल्फकी नेत्र-भंगिमाकी नक़ल करने लगा। जब नक़ल पूरी आ गई, तो रसोईघरके दरवाज़ेपर जाकर पुकारा—"भाभी!" भाभी हाथमें कलछी लिये हुए दरवाज़ेके पास आ खड़ी हुई।

चटकने कहा—"आज बड़ी भारी परीक्षाका दिन है, विशेषकर तुम्हारे लिए। मैं तुम्हारी ओर देखूँगा—तुम्हारे मनमें जो-जो भाव आवें, उन्हें सच-सच कहना—कहोगी न?"

भाभीने कहा—"हाँ, कहूँगी।"

"तो स्थिर होकर खड़ी हो!" कहकर चटकने ओठोंको सिकोड़कर मद-भरे निश्चल नेत्रोंसे उसकी ओर देखकर कहा—"क्यों? हृदयके भीतर कुछ कुड़-कुड़ होता है न?"

भाभीने मुँहमें कपड़ा देकर कहा—"नहीं भाई, मुझे तो हँसी आती है।"

चटक मुरझाकर रह गया। उसी दिनसे उसके हृदयसे भारतीय स्त्रियोंके लिए सारी श्रद्धा जाती रही, और उसने प्रतिज्ञा की कि वह कभी विवाह न करेगा; अगर करेगा भी, तो किसी भारतीय स्त्रीके साथ नहीं। लेकिन एक और गड़बड़ थी। चटकके पिता चक्रपाणि चाकी अपनी सारी सम्पत्ति देवार्पण करते समय जो वसीयतनामा लिख गये थे, उसमें मुख्य शर्त यह थी कि यदि उनका पुत्र म्लेच्छका छुआ अन्न ग्रहण करेगा, तो वह पुजारी पदसे च्युत हो जायगा और उसे सम्पत्तिके उपभोग करनेका अधिकार न रहेगा। इसीलिए चटकने हॉलीवुडकी सभी अभिनेत्रियोंसे मन-ही-मन विवाह कर डाला था, और अपनी मानस-वधुओंके फोटोग्राफोंसे 'चक्रपाणि-निवास' के एकतल्लेके बरामदेसे लेकर तितल्लेके सबसे ऊँचे कोठे तककी दीवारें ढक रखी थीं। चटकका एक शिष्य था सोमेन्द्र। उसने भी बहुत दिनों तक चटकसे विचारोंका आदान-प्रदान करके अपने मकानको हॉलीवुडका चित्रालय बना डाला था। लेकिन अचानक एक दिन क्या-से-क्या हो गया! लोगोंने देखा कि सोमेन्द्र सिरपर मौर रखकर, मोटरपर सवार हो, एक भारतीय लड़कीसे विवाह करने जा रहा है। इसपर चटक बेइन्तहा बिगड़ा। चूँकि सोमेन्द्र अपने बापके निजी मकानमें रहता था, इसलिए चटक उसके मकानका भाड़ा तो दूना न कर सका; लेकिन उसने सबसे यह बात खुल्लमखुल्ला कह दी कि अगर सोमेन्द्र

उसके मकानमें रहता होता, तो वह मकानका भाड़ा ज़रूर ही दुगुना कर देता। भयका असली कारण यही था। किसी-किसीके मनमें चटकके प्रश्नका जवाब देनेकी इच्छा होनेपर भी, किराया बढ़ जानेके भयसे, सर्वेश्वर बाबूके बैठकेमें बैठे हुए सभी लोग खामोश रहे। किसीके मुँहसे बात न निकली।

केवल एक सज्जन ऐसे थे, जिन्हें चटकके प्रश्नपर बुरा मालूम हुआ। उनका नाम था बलराम बाबू। बलराम बाबू पिछले दो वर्षसे अपने लिए कोई अच्छी लड़की तलाश कर रहे थे, और सालमें तीन सौ साठ दिन लड़कियोंके अभिभावकोंके घरोंमें पूड़ी-मिठाईका सद्व्यवहार करते घूमते थे। पिछले तीन दिनसे वे सर्वेश्वर बाबूके अतिथि हुए थे। औरोंकी देखादेखी चटकको देखकर पहले तो उनपर भी कुछ रोब ग़ालिब हुआ; लेकिन वह अधिक देर तक न टिका। और किसीको बोलते न देखकर उन्होंने जवाब दिया। चटकका दम्भ देखकर उन्हें बहुत ग़ुस्सा आ रहा था। उनकी बात समाप्त होते न होते चटकने जवाब दिया। फिर क्या था, दो ही मिनटके भीतर उत्तर-प्रत्युत्तर नीचेसे चढ़कर सबसे ऊँची सप्तकपर पहुँच गये, और सती एवं सती-धर्मपर अच्छा खासा मुबाहसा छिड़ गया। नूरजहाँ और कैथरिनमें कौन बड़ी सती थी, यह निर्णय होनेके पूर्व ही—पहले चूड़ी पहने हुए एक सुडौल हाथ, उसके बाद एक गुच्छा काले घुँघराले बाल और फिर एक सुन्दर मुखड़ा बैठकखानेके पिछले दरवाज़ेकी सँधसे दिखाई पड़ा और सुनाई दिया—"बाबूजी! मेरा टेस्ट इम्तहान—"

चटकने बहसमें ढील देकर तरुणीकी ओर देखा और मुँह नीचा कर लिया; इसकी चितवनको किस अभिनेत्रीके समान कहेगा, वह सहसा निश्चित न कर सका। बलराम बाबूके तर्कका छोर ही खो गया, और वे बिना ज़रूरत नाक खुजलाने लगे। सर्वेश्वर बाबूने चौंककर कहा—"हाँ, लो हम सब

जाते हैं, बेटी !" फिर चटककी तरफ देखकर बोले—"लड़कीका बी० ए० का इम्तहान है—"

चटकने गद्गद कण्ठसे कहा—"आज जो अपराध किया है, उसके लिए क्षमा कीजिएगा।" यह कहकर उसने बास्टर कीटनकी भाँति करुण दृष्टिसे तरुणीकी ओर देखा ; लेकिन तब तक दरवाज़ा बन्द हो चुका था।

[२]

शामको सिनेमा जाते हुए चटक अनावश्यक ही गलीका चक्कर लगाकर एक बार फिर सर्वेश्वर बाबूके मकानके दरवाज़ेपर आ खड़ा हुआ, दरवाज़ा बन्द था। ऊपर नज़र उठाकर देखा, तो छज्जेके एक कोनेमें बलरामका मुख दीख पड़ा। चटक अकारण ही मकानके सभी खुले और बन्द दरवाज़ों और खिड़कियोंपर नज़र दौड़ा गया। इस बीचमें उसने पूछताछ करके बलराम बाबूका परिचय प्राप्त कर लिया था। दाँतोंसे ओंठ दबाते हुए उसने कहा—"लोफर !" और चला गया।

रातमें खाना खाते समय तरह-तरहकी बातोंके सिलसिलेमें चटकके मुँहसे निकल पड़ा—"भाभी, आज मैंने एक लड़की देखी है !"

भाभीने रोज़की तरह कहा—"कौन ? मैडम फेरारा ?" रोज़-रोज़ सुनते-सुनते भाभीको भी अनेक अभिनेत्रियोंके नाम याद हो गये थे।

चटकने कहा—"नहीं। एक हिन्दोस्तानी लड़की।"

भाभी भविष्यकी बात सोचकर प्रसन्न होकर बोलीं—"जान पड़ता है, खूब सुन्दरी है।"

"इतनी सुन्दरी तो नहीं है, जो आँखोंमें बेरीके काँटेकी तरह चुभकर रह जाय, फिर भी है सुन्दरी ! खैर, होगी—" कहकर चटक भोजन समाप्त करके उठा।

भाभीने फौरन पूछा—"घटकीको भेजूँ ?"

चटकने गर्दनसे सिरको कोई तीन इंच तिरछा करके कहा—"घटकी ! ऊँहूँ ! इतनी दूर जानेकी ज़रूरत नहीं।"

भाभी और आगे न बढ़ सकीं ; फिर भी उन्होंने समझा कि देवरके मनमें भारतीय स्त्रियोंके प्रति फिरसे श्रद्धा उत्पन्न हो रही है।

दूसरे दिन सवेरे चटक फिर बिला ज़रूरत ही सर्वेश्वर बाबूके बैठकेकी खिड़कीके सामने आ खड़ा हुआ ; सुना, गाना हो रहा है। हारमोनियमकी आवाज़में यह तो मालूम न हो सका कि किसके गलेकी आवाज़ है, फिर भी सुबहके सन्नाटेमें गज़लका सुर उसे बहुत भला मालूम हुआ। चटक निस्तब्ध होकर सुनने लगा :—

"बागे जहाँमें हरसू फैली यह किसीकी बू है,
दुनिया महक रही है जिस फूलसे वह तू है।
दुनिया महक रही है जिस फूलसे वह तू है।
हिर-फिरके ढूँढ़ता हूँ हर सिम्त जुस्तजू है,
मिल जाय तू कहींसे बस तेरी आरज़ू है।
दुनिया महक रही है जिस फूलसे वह तू है।
हसरत जहानकी है हसरतमें कोई हसरत,
दुनियाकी आरज़ू भी क्या कोई आरज़ू है ?
दुनिया महक रही है जिस फूलसे वह तू है।

आँखें उठा-उठाकर जिस सिम्त देखता हूँ,
सूरत तेरी है जल्वा तेरा है और तू है।
दुनिया महक रही है जिस फूलसे वह तू है।
तू मेरे सामने हो मैं तेरे सामने हूँ,
क्या दिलकी आरज़ू है, यह दिलकी आरज़ू है।
दुनिया महक रही है जिस फूलसे वह तू है"।

गाना खतम होते ही, "क्या सर्वेश्वर बाबू हैं?"—कहता हुआ चटक बैठकेमें दाखिल हुआ। देखा कि फर्शपर बलराम बाबू बैठे हैं, सामने हारमोनियम और बगलमें एक तश्तरीमें दो-चार गरमागरम समोसे और एक प्याला चाय रखी हुई है। चटकको ऐसा जाना पड़ा, मानो वह किसी दुश्मनके क़िलेमें घुस आया है। आदतके मुताबिक़ उसने फौरन जेबमें हाथ डाला; लेकिन पिस्तौलकी जगह निकली एक लाल-नीली पेंसिल। उसीको मुट्ठीमें ज़ोरसे पकड़कर उसने बलराम बाबूकी ओर देखते हुए गम्भीर स्वरमें कहा—"आप आज भी यहाँ मौजूद हैं?"

बलराम बाबू हड़बड़ाते हुए उठकर तीन क़दम पीछे हट गये। चायका प्याला उलट पड़ा। चटक फर्शपर लुढ़के हुए प्यालेकी ओर उँगलीसे इशारा करके बोला—"ठीकसे उठाकर रखिये।"

बलराम बाबूके अकस्मात पीछे हटनेसे जो धपधप आवाज़ हुई थी, जान पड़ता है, वह भीतर भी पहुँची थी। कलकी भाँति आज भी पीछेका दरवाज़ा खुला, और उसीने प्रवेश किया। एक आँख पसारते और दूसरी झपकाते हुए चटकने उसकी ओर देखा। तरुणीने कहा—"बाबूजी घरपर नहीं हैं।"

चटकके हाथकी पेंसिल काँप उठी। उसने मीठी आवाज़में कहा—"तो उनके लिए बैठूँ—"

तरुणीने फिर कहा—"लेकिन मेरा इम्तहान—"

चटककी आँखोंमें आग जल उठी, उसने मन-ही-मन कहा, बलरामके लिए तो चाय और गरमागरम समोसे और मेरे लिए इम्तहान! मुँहसे कहा—"अच्छा।"

तरुणी चली गई। चटकने बलरामकी ओर देखकर कहा—"अब और कितने दिन ठहरेंगे?"

बलराम बाबू और एक क़दम पीछे हट गये, बोले—"सर्वेश्वर बाबू जभी जानेको कहेंगे—"

चटक और न ठहरा।

उस दिन रातको सिनेमामें जोन क्राफोर्डकी तसवीरकी ओर देखते हुए चटकने देखा कि तसवीरका मुखड़ा बहुत-कुछ सर्वेश्वर बाबूकी लड़कीकी तरह हो गया है।

[३]

दूसरे दिन सवेरे बलराम बाबूने अमलासे कहा—"मुझे जाना है।"

अमलाने कहा—"अच्छा जाइयेगा। बाबूजीसे पूछ लीजिए।"

बलराम इससे पहले ही सर्वेश्वर बाबूसे पूछ चुके थे और यह भी बता चुके थे कि उन्हें लड़की पसन्द है। सर्वेश्वर बाबूने प्रसन्न होकर बलरामको अमलाकी अनुमति प्राप्त करनेकी आज्ञा दी थी।

बलराम बाबूने कहा—"मैं तो न जाता ; लेकिन—"

अमलाने 'हैमलेट'को उलटकर रखते हुए पूछा—"लेकिन क्या ?"

"चटक बाबू मुझे पसन्द नहीं करते।"—कहकर बलराम बाबूने एक लम्बी साँस ली।

"चटक बाबूसे आपका सम्बन्ध ? क्या वे आपके मालिक हैं ?"—अमलाने पूछा।

"नहीं, फिर भी वे आप लोगोंके बन्धु तो हैं ही।"

अमला बिगड़ गई—"हमारा बन्धु कोई नहीं है। आप रहिये। मैं देखूँगी।"

बलराम बाबू प्रसन्न होकर बैठकेमें जा बैठे और बाहरके दरवाज़ेकी चटखनी चढ़ा ली।

आध घण्टे बाद दरवाज़ेके पास चटककी आवाज़ सुनाई दी—"सर्वेश्वर बाबू हैं ?"

बलराम बाबूने दरवाज़ेकी चटखनीकी ओर एक बार निहारा और कहा—"नहीं हैं। अमलाका इम्तहान—"

बाहर कुछ क्रोध-भरी अस्पष्ट-सी आवाज़ सुनाई दी और उसके बाद ही प्रश्न हुआ—"आप आज भी मौजूद हैं ?"

बलराम बाबूने पीछेके दरवाज़ेकी तरफ देखा। अमला दरवाज़ेके पास ही बैठी पढ़ रही थी ; उन्होंने अकड़के साथ जवाब दिया—"हाँ, हूँ तो।"

"बाहर आइयेगा ?"

"नहीं,"—कहकर बलरामने हारमोनियम खोलकर तान लगाई :—

"दुनिया महक रही है जिस फूलसे वह तू है।"

उसके बाद ही हारमोनियम बन्द करके दरवाज़ेसे कान लगाकर सुना, बाहर कोई आवाज़ नहीं सुन पड़ी ।

पात्रकी पसन्द तो हो गई ; अब असल काम पात्रीकी पसन्दपर निर्भर करता है । बलराम बाबू पात्रीकी ओर बार-बार निहारने लगे ; लेकिन उसके मुखपर न तो प्रणयका ही कोई चिह्न मिला और न लज्जाका ।

× × × ×

मुग़ल थियेटरमें "हैमलेट"* की तसवीर दिखाई जा रही थी । सर्वेश्वर बाबू तो नहीं जा सके, इसलिए बलराम बाबू अमलाकी शेक्सपियरकी नोटबुकोंको बग़लमें दबाकर उसके पीछे-पीछे ट्रामपर चढ़े ।

इंटरवेलके समय किसीने बलरामके कंधेपर हाथ रखा । बलरामने घूमकर देखा, तो सिहर उठे, चटक ! चटकने कहा—"ज़रा बाहर आइये !"

बलरामने अमलाकी नोटबुकको मुट्ठीमें कसकर पकड़ते हुए कहा—"यहाँ ही कहिये ।"

"यहाँ कहनेकी बात नहीं ।" —कहकर चटकने बलराम बाबूका हाथ पकड़कर खींचा ।

अमला बोली—"जाइये न बाहर !"

मजबूरन बलराम बाबू बाहर आ खड़े हुए ।

चटकने कहा—"और थोड़ी दूर, उस चमड़ेके गोदामके पीछे ।"

बलराम बाबू मन्त्रमुग्धकी भाँति चले ।

चटकने शेक्सपियरके आक्सफोर्ड संस्करणको बायें हाथसे दाहने हाथमें लेकर कहा—"सुनो जी बलराम ! इस संसारमें अमलाके दो प्रेमियोंका स्थान

* 'हैमलेट' शेक्सपियरका एक नाटक है, जो बी० ए० की पाठ्य-पुस्तकोंमें है ।

नहीं है। या तो तुम रहोगे या मैं। अँधेरी रात है। इस सुनसान गलीकी मोड़पर पहरेवाला भी नहीं है। तुम्हारे साथ मैं 'डुएल' (द्वन्द्व) लड़ूँगा। जो जीतेगा, अमला उसीकी होगी!"

बलराम बाबूने काँपते स्वरसे कहा—"मैं न लड़ सकूँगा।"

"तुझे लड़ना होगा, कायर! जा, गलीके उस पार खड़ा हो। तेरे हाथमें वह मोटी कापी है, मेरे हाथमें यह शेक्सपियर है। इन्हीं दोनों पिस्तौलोंसे छोड़ो गोली! एक—दो—तीन!"

साँयसे गलीके दोनों ओरसे किताबें छूटीं; लेकिन लक्ष्यपर पहुँचनेके पहले ही अँधेरेमें आती हुई एक साइकिलके अगले पहियेसे दोनों अस्त्र जा भिड़े। साइकिल-सवार साइकिल रोककर उतर पड़ा। बलराम बाबू भयसे गलीके उत्तरकी ओर भाग खड़े हुए और चटक दक्षिणकी ओर क्लाइव ब्रुककी तरह लम्बे-लम्बे डग मारता हुआ चम्पत हुआ। साइकिल-सवारने चारों तरफ नज़र दौड़ाई। देखा, पुलिसवालेका कहीं पता नहीं। लिहाज़ा उसने पलक मारते दोनों किताबें उठा लीं और पूर्वकी ओर साइकिल मोड़ दी।

[४]

सच पूछिये तो यह गल्प नहीं है, उपन्यास है। इसलिए पाठक-पाठिकाएँ स्वभावतः यह प्रश्न करेंगी कि आखिर अमलाका क्या हुआ?

कुछ भी नहीं हुआ। अमलाने घर लौटकर चाय बनाकर पी। उसके बाद पूछा—"बलराम बाबू कहाँ हैं?"

कोई भी कुछ न बतला सका।

दूसरे दिन सबेरे देखा गया कि बलराम बाबूके भोजनकी पूड़ियाँ वैसी ही ढकी रखी हैं ; बलराम बाबू नदारद हैं।

अमलाने कहा—"मेरी नोटबुक ?"

सर्वेश्वर बाबूने कहा—"मैंने नहीं देखी। क्या बलराम बाबू दे नहीं गये ?"

अमलाने कहा—"नहीं। मेरा इम्तहान है। बाबूजी, ज़रा चटक बाबूके घर जाकर देखिये। मुमकिन है, बलराम बाबू वहाँ हों।"

सर्वेश्वर बाबू चटकके घर पहुँचे। लेकिन चटक चारपाईपर धरा था। गलीसे दौड़ते समय मोड़पर बीड़ीकी दुकानवालेने 'चोर-चोर' कहकर उसका पीछा किया था। चटक डगलस फेयरबैंककी नक़ल करता हुआ जब छलांग मारकर एक चलते हुए रिक्शेपर कूदने लगा, तो चार्ली चैपलिनकी भाँति उलट गया, जिससे उसके चोट लग गई। सर्वेश्वर बाबूको ये बातें तो मालूम नहीं हुई। उन्होंने सिर्फ इतना ही सुना कि बलराम बाबू वहाँ नहीं हैं और न अमलाकी नोटबुक।

यह सुनकर अमला रोने लगी—बलराम बाबूके लिए नहीं, अपनी नोटबुकके लिए, क्योंकि अगले ही दिन उसका इम्तहान था।

इसी समय बाहरका कुंडा खटका। सर्वेश्वर बाबूने दरवाज़ा खोल दिया। एक युवकने बैठकेमें प्रवेश करके पूछा—"मिस अमला यहाँ हैं ?"

अमला आ खड़ी हुई और बोली—"मैं ही हूँ अमला।"

आगन्तुकने कहा—"यह नोटबुक आपकी है ? कल मैंने पड़ी पाई थी।"

खुशीसे अमला खिल पड़ी—"आपने मुझे बचा लिया। यह नोटबुक न मिलनेसे ही मैं रो रही थी। आपने इसे कहाँ पाया ?"

आगन्तुक वीरेश्वर दासने हँसकर कहा—"यह मत पूछिये। अपनी

नारी निर्यातन

चटकके जिस चेलेका उल्लेख इससे पहले कर चुके हैं, उसका कुछ खुलासा परिचय देना ज़रूरी है। बहुत संक्षेपमें और सहज भावसे ही लिखे देता हूँ। यह कहानी भी हो सकती है, उपन्यास भी हो सकता है और अगर इतिहास भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं।

सोमेन्द्र चौधरी कलकत्ता-यूनिवर्सिटीमें पाँचवें वर्ष (एम० ए० प्रीवियस) का अंगरेज़ीका छात्र है, और 'जीवनाङ्क संघ' का सभापति है। संघका मक़ूला था कि मनुष्यका समूचा जीवन एक विशाल नाटक है; प्रत्येक दिन उसका नया दृश्यपट है और प्रत्येक मानव-मानवी उसके नट या नटी। आहारमें, विहारमें, हरएक विषयमें, हरएक बातमें इसी नाटकीय अनुभूतिको प्राप्त करना ही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। चटक इसी संघका 'पैट्रन' (संरक्षक) था। चटकने कुछ पैसा भी दिया था; लेकिन अचानक सोमेन्द्रने एक ऐसा खराब काम कर डाला, जो संघकी नीतिके विरुद्ध था। नतीजा यह हुआ कि 'जीवनाङ्क संघ' का जीवनान्त हो गया; चटक और सोमेन्द्रमें बन्धु-विच्छेद हुआ; और भविष्यमें सोमेन्द्रके इस दुष्कर्मका फल फलनेपर क्या-क्या होगा, कौन जानता है? खैर, जो होना होगा वह होगा, इस समय उसके लिए चिन्ता करनेसे कुछ फायदा नहीं।

सोमेन्द्र विचारोंमें चटकका शिष्य और लड़कपनका मित्र था। थर्डक्लासमें पढ़ते समयसे ही वह चटकके साथ बाक़ायदा थियेटर और सिनेमा देखता फिरता था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह कभी विवाह न करेगा, यदि हॉलीवुडकी भी कोई सुन्दरी आकर पाणि-प्रार्थना करे, तो भी नहीं। सोमेन्द्रकी नानी और भाभी दोनोंने ही कई बार बाबा ताड़कनाथकी मनौती मानी; किन्तु सोमेन्द्रके निश्चयमें परिवर्तन न हुआ। फिर भी एक बार नानीने ज़बरदस्ती करके सोमेन्द्रको एक लड़की देखनेके लिए भेजा था; किन्तु उसका नतीजा अच्छा न निकला।

बात यह हुई कि एक दिन रातको सोमेन्द्र मुग़ल थियेटरमें 'जहाँगीर' नाटक देखकर जो घर लौटा, तो देखा कि बरामदेमें लेटी हुई अनारो महरी झपकी ले रही है। सोई हुई अनारोको देखकर सोमेन्द्र सलीमके भावों डूब गया। रेलिंगपर भार देकर और दाहना हाथ उठाकर वह कह उठा—"यह क्या वही अनारकली है? बचपनमें जिसके साथ—अनारकली! अना—" अनारो महरीकी अचानक नींद टूट गई और वह चीख उठी। नानी राम-राम जपना भूलकर दौड़ पड़ीं। भाभीने रो-रोकर सोमेन्द्रके सिरपर पानी डाला। दूसरे दिन भाभी और नानी दोनोंने सलाह करके उपवास करना शुरू किया। इस सत्याग्रहसे मजबूर होकर सोमेन्द्रको बागबाज़ारके रामगोपाल बाबूके घर लड़की देखनेको जाना पड़ा। भीतर-भीतर विवाहकी बातचीत चल रही थी। लड़की सज-धजकर जैसे ही आकर खड़ी हुई, वैसे ही सोमेन्द्रने उसका बायाँ हाथ ज़ोरसे पकड़कर, 'कच-देवयानी' नाटकके कचकी भाँति, कहा—

"मैं हूँ ब्रह्मचर्य व्रतधारी,
पतिके योग्य नहीं सुकुमारी!"

लड़की बेचारी थरथर काँपने लगी—मालूम नहीं, पीड़ासे अथवा लज्जासे। लड़कीका भाई अविनाश 'हाँ-हाँ' करके दौड़ पड़ा; लेकिन बी० ए० में फर्स्टक्लास फर्स्ट होनेवाले सोमेन्द्र चौधरीके शरीरमें हाथ लगानेका साहस सेकेण्ड-इयर फेल लड़केको न हुआ। सोमेन्द्र सहसा तेज़ीसे बाहर निकला और कूदकर ट्रामपर सवार हो गया। घर पहुँचकर वह नानी और भाभीको धमकाने लगा कि इसके बाद घरमें अगर कोई उसके विवाहकी बात उठायेगा, तो वह गंगा-किनारे निष्क्रियानन्दमठमें जाकर संन्यास ले लेगा।

नानीने बत्तीस दाँतोंमें से बचे हुए आगेके दो दाँतोंसे जीभ काटकर कहा—"राम! राम! बेटा, ऐसी बात न कहो।"

सोमेन्द्रने पढ़नेके कमरेका दरवाज़ा ज़ोरसे बन्द करते हुए कहा—"कहूँगा, कहूँगा, हज़ार बार कहूँगा! आकाशमें चाँद-तारे साक्षी हैं! स्वर्गमें मेनका-उर्वशी साक्षी—" और सुनाई न दिया। खिड़की भी बन्द हो गई। रसोईघरमें बैठी हुई भाभी 'चन्द्रकान्ता' के खुले हुए पृष्ठपर मुँह रखकर फूट-फूटकर रोने लगीं। इसके बादसे घरमें सोमेन्द्रके विवाहका प्रसंग एकदम वर्जित हो गया।

यहाँ तक हुई भूमिका।

[२]

अब कहानीकी पारी है।

उस दिन आषाढ़का पहला दिन था। नये बादलोंसे छाया हुआ नीला आकाश ऐसा दीखता था, मानो किसी तरुणीके अंगोंमें लिपटी हुई गहरी नीली

साड़ीका आँचल। बिजली ऐसी चमकती थी, जैसे उस आँचलमें टँकी हुई गोटा-किनारी। आकाशमें मेघोंका गर्जन, नीचे ट्रामकी घरघर और गलीकी मोड़-मोड़पर 'चना ज़ोरगरम' वालेकी लगातार आवाज़। सोमेन्द्र एक ठोंगे (कागज़के लिफाफे) में चना ज़ोरगरम लेकर बसपर सवार हुआ। दस बजेवाली बस। मुसाफिरोंसे खचाखच भरी हुई। पीछेकी बेंचपर एक कोनेमें थोड़ी-सी जगह निकालकर सोमेन्द्र बैठ गया। बस चलते-चलते रुक गई; हाथमें किताबें और कापियाँ दाबे सवार हुई एक अष्टादशवर्षीया युवती। गाड़ी-भरके तमाम यात्रियोंने एक बार गर्दन घुमाकर देखा, केवल सोमेन्द्रने निर्विकार भावसे देखा। लड़की एक बार इधर-उधर देखकर सोमेन्द्रके पास आ खड़ी हुई और लोलुप दृष्टिसे सोमेन्द्रके पास रखे हुए पुस्तकोंके ढेरको देखने लगी। किताबें उठा लेनेसे युवतीके बैठनेको जगह हो सकती है, किन्तु इतने पास! घृणासे सोमेन्द्रके शरीर-भरके रोंगटे खड़े हो गये। वह किताबें लेकर उठ खड़ा हुआ और गाड़ीकी दीवारसे पीठ टिकाकर खड़ा हो गया। तरुणी बैठ गई और बोली—"थैंक्स! कहाँ जा रहे हैं?"

सोमेन्द्रने हाथकी किताबोंको निर्दयतासे दबाकर कहा—"भाड़में।"

तरुणीने कहा—"वह (भाड़) शायद आशुतोष बिल्डिंगमें * है?"

सोमेन्द्रने निर्विकार भावसे कहा—"हाँ।"

तरुणी बोली—"चलिये, मैं भी वहीं चलती हूँ।"

सोमेन्द्रने कहा—"थैंक्स!"

दोनों एक ही क्लासमें पढ़ते हैं, एक दूसरेकी शक्ल भी देखी है; लेकिन बातचीत आज ही पहले-पहल हुई।

---

* कलकत्ता-यूनिवर्सिटीके एम० ए० क्लासकी पढ़ाई 'आशुतोष बिल्डिंग' में होती है।

कमलाने भी फर्स्टक्लासमें बी० ए० पास किया था ; लेकिन वह सोमेन्द्रसे दो सीढ़ी नीचे थी। सोमेन्द्रके साथ बातचीत करनेकी इच्छा उसकी बहुत दिनोंसे थी, इसलिए कि पढ़ने-लिखनेमें सुभीता होगा। लेकिन सोमेन्द्रके स्वभाव और रंग-ढंगकी बातें सुनकर वह अब तक उसके पास नहीं फटकी थी। आज घटनावश परिचय हो जानेसे वह खुश हुई, साथ ही सोमेन्द्रको समझ भी गई।

बससे उतरकर सोमेन्द्र दनदनाता हुआ सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। ऊपर पहुँचते ही देखा कि दरवाज़ेके पास कमला खड़ी है ! वह लिफ्टसे चढ़ी थी। सोमेन्द्रको देखते ही उसने चना ज़ोरगरमका ठोंगा बढ़ाते हुए कहा—"लीजिए ! इसे तो आप बसपर ही छोड़ आये थे।"

घनिष्टता बढ़ानेकी इस बेतुकी चेष्टाको देखकर सोमेन्द्र बिगड़ उठा, बोला—"नहीं चाहिए। ले जाइये, टिफिन कीजिएगा।"

कमलाने कहा—"थैंक्स !"

और पाँच-सात मिनट बादकी बात है। सोमेन्द्र ध्यान लगाये कुछ लिख रहा था, कमलाने पीछेसे आकर कहा—"ज़रा अपनी पेंसिल दीजिएगा ?"

सोमेन्द्रने एक बार सिर उठाकर देखा, फिर मन-ही-मन दाँत किचकिचाकर जेबसे एक पैसा निकालकर डेस्कपर फेंक दिया और कहा—"जाकर खरीद लीजिए।"

कमलाने पैसा उठाकर कहा—"थैंक्स !"

उसके बाद चार बजेके वक्त सोमेन्द्र लाइब्रेरीमें बैठा 'अपालोजिया' के एक नये संस्करणसे नोट लिख रहा था ; कमला आई और सोमेन्द्रके सामने खुली हुई किताबपर एक पैसा फेंककर बोली—"चना ज़ोरगरमका पैसा।"

किताबपर ज़ोरसे घूँसा मारकर सोमेन्द्रने आगेके दाँतोंसे ओंठ चबाते हुए कहा—"डै—"

शब्द पूरा होनेके पहले ही अचानक सामने प्रोफेसर जयगोपाल आ पड़े, उन्हें देखते ही उसने जल्दीसे कहा—"ऍक्स !"

पीछेसे कमलाने धीमी आवाज़में कहा—"डैक्स !" और कुछ हँसकर बाहर निकल गई ।

सोमेन्द्रको सामनेकी किताबके अंगरेज़ी अक्षर चीनी लिपि-जैसे जान पड़ने लगे । फिर उस दिन और नोट लिखना न हो सका ।

शामको नानी और भाभीने छतपर आकर देखा, सोमेन्द्र 'दुर्गेशनन्दिनी' के कैदखानेमें बन्द जगतसिंहकी भाँति इधर-से-उधर टहल रहा है और कह रहा है—"कमला, गमला, हमला, शिमला—हूँ ! हूँ !"

लेखकने समझा कि इस बेचैनीका कारण है छन्दमें तुक मिलानेकी कठिनाई ; नानीने समझा कि उनके नातीका मन कमला नीबू (नारंगी) खानेके लिए चला है ; और भाभीने समझा कि कमला किसीका नाम है । नानी और भाभी बिना कुछ कहे-सुने धीरेसे उतर गईं ; लेकिन मैं ठहरा लेखक, इसलिए बाध्य होकर—कहानी समाप्त करनेके लिए—मैं अशरीरी अवस्थामें सोमेन्द्रके साथ रह गया । कोई घंटे-भर बाद मैंने देखा कि संसारके सारे अशिष्ट और ख़राब शब्दोंके अन्तमें 'ला' जोड़कर और कमलाका नाम संयुक्त करके एक लम्बी कविता रची गई है । इस प्रकार बदला चुकाकर सोमेन्द्रने आरामचौकीपर लेटकर आरामकी लम्बी साँस ली ।

[३]

दूसरे दिन ।

प्रोफेसरके आनेमें देर थी । जिस बेंचपर कमला अपनी सहपाठिनोंके साथ बैठती थी, सोमेन्द्र अनजानमें रह-रहकर क्रुद्ध दृष्टिसे उसीकी ओर देख रहा था । इतनेमें दाहनी ओरसे किसीने पूछा—"आज कैसा मिजाज है, सोमेन्द्र बाबू ?"

सोमेन्द्रने नज़र उठाकर देखा, कमला ! कमरेमें लड़के भरे हुए थे, इसलिए वह बिगड़ न सका । पिछली शामको बनाई हुई कविताका कागज़ कमलाके हाथमें देकर बोला—"यह आपका है, ले जाइये ।"

कमला चली गई और चलते वक्त कह गई—"थैंक्स !"

सोमेन्द्र मन-ही-मन आग बबूला होने लगा ।

कमलाको अपने परिहासका उपयुक्त उत्तर मिल गया, इसी खुशीमें उस दिन सोमेन्द्र सिनेमा देखने गया । वहाँसे लौटते ही भाभीने एक चिट्ठी दी—खूब लम्बा-चौड़ा लिफ़ाफ़ा । सोमेन्द्रने तितल्लेपर अपने कमरेमें जाकर चिट्ठी खोली, लिखा था—

"थैंक्स फार योर कम्प्लिमेन्ट्स (आपकी प्रशंसाके लिए धन्यवाद) ! मुझे दुख है कि मैं तसवीर बनाना तो जानती हूँ; किन्तु कविता रचना नहीं जानती, इसीलिए— इति ।

कमला ।"

मोटे चौकोर आर्ट पेपरपर लिखे हुए इन दो-तीन वाक्योंको पढ़कर सोमेन्द्रने चिट्ठी जो पलटी, तो देखा कि उसकी पुश्तपर एक तसवीर बनी है,

चेहरा हूबहू सोमेन्द्रका है, हाथमें किताबें हैं और सिरपर चना ज़ोरगरमका ठोंगा ; नीचे लिखा है, 'श्रीयुत चना ज़ोर चौधरी !'

निर्लज्जा नारी ! पास होती, तो झोंटा पकड़कर ऐसे दो घूँसे लगाता। सोमेन्द्र हवामें घूँसा चलाने लगा। किसकी चिट्ठी आई है, यह जाननेके लिए भाभी आकर खिड़कीसे देख रही थीं। उन्होंने पूछा—"देवरजी ! किसे घूँसा मार रहे हैं ?"

उठे हुए घूँसेको जल्दीसे पाकेटमें छिपाकर सोमेन्द्रने कहा— "परेशान मत कीजिए ; मैं कसरत कर रहा हूँ।"

भाभीने कहा—"डम्बल कहाँ हैं ?"

पाकेटसे हाथ निकालकर मुट्ठी बाँधते हुए सोमेन्द्रने कहा—"डम्बलकी ज़रूरत नहीं, अब तो मुगरी होगी।"

सोमेन्द्रकी आँखें देखकर भाभी सहम गईं और झपटकर नीचे उतर आईं। सोमेन्द्रने फिर तसवीर देखी, देखा कि इस तसवीरके सामने उसकी कविता कुछ भी नहीं थी—मानो आलपीन चुभानेके बदलेमें छुरी भोंकना !

इसी समय नानीने आकर कहा—"भैया, आ, त्रिफलाका पानी पी ले।"

सोमेन्द्रने बड़े तीखे स्वरमें कहा—"तीनफला नहीं, चौदहफला चाहिए।"

त्रिफलाके बदले चौदहफला मिल सकता है या नहीं, यह जाननेके लिए नानीने फौरन अनारो महरीको सम्पतराम वैद्यके घर भेज दिया।

[४]

त्रिफलाका पानी पीकर भी उस दिन रातमें सोमेन्द्रको नींद नहीं आई। सारी रात वह कमलाकी धृष्टताका चोखा बदला लेनेके उपाय सोचता रहा। कवितासे काम नहीं चलेगा। कमलाकी एक फोटो मिल जाय, तो किसी आर्टिस्टको देकर एक कार्टून बनवाया जा सकता है। यह खूब रहेगा; लेकिन उससे फोटो तो माँगी नहीं जा सकती। माँगनेसे तो सब मामला ही गड़बड़ हो जायगा! तब फिर—

उपाय खोज निकालनेके पहले ही भोर हो गया। कभी 'एटलान्टा', कभी कमला, कभी मिल्टन—इन सब विचित्र विचारोंके धक्के खा-खाकर उसका मन क्लान्त हो रहा था, इतनेमें दस बजा। ट्रामपर कालेजको चला, रास्तेका काफी हिस्सा खतम हो चुका था, इतनेमें एक तरुणीके साथ कमला ट्रामपर चढ़ी। सोमेन्द्र अपनी किताबें समेटकर उतरनेकी कोशिश कर ही रहा था कि कमलाने पूछा—"कहाँ जाते हैं?"

सोमेन्द्रने कहा—"चना ज़ोरगरम ख़रीदने।"

कमलाने शरारत-भरी हँसी हँसते हुए कहा—"थोड़ा-सा मेरे लिए भी लाइयेगा—थैंक्स!"

साथकी सहपाठिन खिलखिलाकर हँस पड़ी। सोमेन्द्र आँखें लाल करता हुआ उतर गया।

कोई घंटे-भर बाद कमलाके डेस्कपर चना ज़ोरगरमका एक ठोंगा पहुँचा। कमलाने खोलकर देखा, उसके भीतर चना ज़ोरगरमकी जगह केलेके छिलके भरे हैं। वह हँस पड़ी। दूरसे सोमेन्द्रने देखा कि कमला चिढ़ी नहीं।

इस प्रकार अपना वार खाली जाते देख वह सिकुड़कर रह गया। छुट्टी होनेपर सोमेन्द्र कालेज स्कायरके सामने खड़ा हुआ बसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसके पीछे अपनी सखीके साथ आकर कमला कबसे खड़ी हँस रही है, उसने देखा ही नहीं। जब वह बसपर चढ़कर बैठ गया, तब कमलासे चार आँखें हुईं। कमलाने चटपटे स्वरमें कहा—"सोमेन्द्र बाबू, आपने अपने खानेकी चीज़ मुझे भेज दी थी—उसके लिए थैंक्स!"

सोमेन्द्रने मुँह फिरा लिया, इच्छा हुई कि दाँतों और नाखूनोंसे इस लड़कीको काटकर टुकड़ा-टुकड़ा करके फेंक दे!

अगले दिन सोमेन्द्र कालेजके समयसे एक घंटा पहले ही घरसे निकल पड़ा, और छुट्टी होनेके पहले ही लौट आया। कालेजमें अवश्य ही अनजानमें उसने दो-एक बार कमलाकी ओर ताका था, गम्भीर मुखसे। कमलाने भी उसकी ओर देखा था; किन्तु उसकी दृष्टिमें था कौतुक और विद्रूप! इसी प्रकार लगभग पन्द्रह दिन कट गये। बातचीत न होनेपर भी सोमेन्द्रके दिमाग़में बदला लेनेकी कल्पना अड्डा जमाकर बैठी हुई थी। एक तुच्छ नारी उसे पराजित करके, उसीकी आँखोंके सामने, स्वच्छन्दतासे विचरण करती रहे, यह असह्य था! भाभीको सारी घटना बतलानेसे वे अवश्य ही बदला लेनेका कोई अच्छा उपाय निकाल सकती हैं, यह विश्वास सोमेन्द्रको था; किन्तु एक नारीकी अक़्ल ठिकाने लगानेके लिए दूसरी नारीसे सहायता माँगनेको उसका मन किसी तरह राज़ी न होता था। अन्तमें अचानक बदला लेनेका एक बड़ा अच्छा मौक़ा हाथ लगा।

बदला लिए बिना काम न चलता था। एक तो प्रतिदिन कमलाका वह कौतुक भरा असह्य हास्य, दूसरे बसपर कहीं कमलासे भेंट न हो जाय,

इस डरसे कालेज जानेमें भी कोताही होने लगी थी। जैसे बने वैसे एक बार कमलाको हमेशाके लिए ठीक करना ही होगा। उस दिन इसका सुयोग भी मिल गया।

उस दिन छुट्टी थी। सड़कको मोड़पर पहुँचते ही सोमेन्द्रने देखा कि कमला अपने क्लासकी अन्य दो छात्राओंके साथ एक टैक्सीपर चढ़ी और ड्राइवरसे पुकारकर कहा—"चलो बोटैनिकल गार्डन।"

सोमेन्द्र एक मिनट तक तो कुछ सोचता रहा, फिर जाती हुई एक टैक्सीको रोककर उसपर सवार हुआ और कहा—"बोटैनिकल गार्डन।"

बोटैनिकल गार्डन। संध्याका समय। सहेलियाँ तो पेड़-पत्ते देखती फिरती थीं, और कमला एक बेंचपर पीठ टेके बैठी थी। आसपास एकदम सुनसान था। सोमेन्द्र एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीमें अपनेको छिपाता हुआ, इसी सुयोगकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब सहेलियाँ काफी दूर निकल गईं, तो एकाएक कमलाके सामने आकर बोला—"चना ज़ोरगरम खाइयेगा?"

कमला चौंक पड़ी, उसी तरह हँस न सकी, फिर भी आदतके मुताबिक़ कह उठी—"थैंक्स, दीजिए—"

सोमेन्द्रने लाल आँखें करके कमलाका दाहना हाथ कसकर ज़ोरसे मुट्ठीमें पकड़ लिया और कहा—"मन चाहता है कि तुम्हारे बाल पकड़कर—"

यह कहते हुए वह स्वयं चौंक पड़ा, देखा कि कमलाकी केशराशि अपने ही आप झूलकर उसकी छातीके पास आ पड़ी है। कमला निश्चल है। हक्काबक्का-सा होकर सोमेन्द्र धपसे बेंचपर बैठ गया। उसी समय कमलाने आँचलसे अपनी आँखें ढक लीं। सोमेन्द्रने देखा कि कमला रो

रही है। हाथकी मुट्ठी खोलकर उसने घबरा कहा—"क्या हाथमें लग गई ?"

कमलाने हाथ हटाये बिना ही कहा—"नहीं।"

सोमेन्द्रकी समझमें कुछ न आया, बोला—"तब—"

कमलाने आँचलको आँखोंसे हटाये बिना ही कहा—"उस तसवीरको फाड़कर फेंक दीजिएगा,—और क्षमा—"

सोमेन्द्रको कोई बात ही न सूझी। गुम-सुम होकर बैठा रह गया। सहसा दूरपर हँसीकी आवाज़ सुनकर उसका ध्यान भंग हुआ। देखा, कमलाकी दोनों सहेलियाँ हँस रही हैं। जल्दीसे उठकर उसने कहा—"हाथ मुरक गया है—टिंचर आयोडीनकी एक पट्टी—" कहकर बाँधनेका इशारा करके वह लम्बा हुआ। दूरसे एक बार मुड़कर देखा कि कमला मुँह नीचा किये खड़ी है।

× × × ×

तितल्लेपर अपने कमरेमें घुसते ही सोमेन्द्रने देखा कि भाभी कमलाकी बनाई उस तसवीरको देख-देखकर हंस रही हैं। सोमेन्द्रने कहा—"भाभी ! मैंने गज़ब कर डाला।"

भाभी चौंक पड़ीं, बोलीं—"क्या हुआ ?"

सोमेन्द्र बिछौनेपर चित लेटकर बोला—"नारी-निर्यातन !"

भाभीने भयसे कहा—"नाटक रहने दो ! साफ-साफ कहो, मुझे बड़ा डर मालूम होता है !"

सोमेन्द्रने आँखें मींचकर कहा—"तो सुनोगी ? अच्छा सुनो, सोमेन्द्र नामका एक लड़का था—" उसके बाद इसी कहानीकी ही पुनरावृत्ति।

भाभीने सब सुनकर कहा—"देवरजी, यदि तुम पहलेसे ही मुझे बतला देते, तो तसवीर पानेके दूसरे ही दिन मैं उसे करारा जवाब दे देती। अच्छा, अब तुम रहने दो, मैं उसकी अक़ल ठिकाने लगा दूँगी।"

दूसरे दिन सोमेन्द्र ठीक दस बजे कालेज गया, पर कमला न दीख पड़ी। हाँ, उसकी दोनों साथिनें सोमेन्द्रकी ओर देखकर हँस दीं। उन्होंने हाथ उठाकर नमस्कार भी किया।

अगले दिन भी कमला नहीं आई।

इसी बीचमें स्त्रीका तार पाकर सोमेन्द्रके बड़े भाई छपरासे आ गये। चिट्ठीपर ठिकाना लिखा देखकर भाभी और नानी कमलाके घर भी हो आईं। नतीजा यह हुआ कि एक दिन कमलाके मामा और सोमेन्द्रके भाईमें, रास्तेमें खड़े-खड़े, लगभग घंटे-भर तक बातें हुईं—दोनों एक-दूसरेके घर जा रहे थे।

बादमें एक दिन कालेजमें कमलासे सोमेन्द्रकी भेंट हुई। कमला फौरन ही सिरका आँचल खींचने लगी; लेकिन आँचल ब्रूचमें अटका होनेसे खिंच न सका। फलतः बेचारी नीचा मुँह करके अत्यन्त निरीह प्राणीकी भाँति बैठी रह गई, और सोमेन्द्र भी पेंसिल बनाने लगा।

अन्तमें एक सामान्य नारीकी अक़ल ठीक करनेके लिए एक दिन शामको वरके वेशमें, टैक्सीपर चढ़कर, बरातियोंकी फौजके साथ, सोमेन्द्रने कमलाके घरकी ओर धावा बोला।

ज्वार-भाटा

5

जिस उम्रमें कौवेके बोलनेसे कोकिलका भ्रम होता है, उसी बाईस वर्षकी उम्रमें बेचाराम बाबूने मंजरीसे विवाह किया था।

उस समय भविष्यका किसीने भी विचार नहीं किया। वर-वधू और उनके नाते-रिश्तेदारों—सभीकी दृष्टि केवल वर्तमानपर ही थी। बेचाराम बाबूने देखी दो नीबूकी फाकों-जैसी आँखें, मोतीका लटकन और पानोंकी लालीसे किंचित आरक्त दुग्ध-धवल दाँतोंकी दो पंक्तियाँ। वधूने देखी घी-दूधसे परिपुष्ट सुडौल देह, भरी हुई गर्दन और नवीन जलधर-सी श्यामल एक देवमूर्ति। मंजरीकी माताने देखा एक गऊ-सा सीधा बालक, जो माँगकर खाना तक नहीं जानता। मंजरीके पिताने देखा बेचारामके बाप तुलाराम बाबूके पास कलकत्ते शहरमें भाड़ेपर चलनेवाले तीन मकान और सुन्दरबनमें तीन सौ बीघेकी ज़मींदारी।

विवाह खूब धूमधामसे हुआ था—उस दिनकी याद करके आज भी बेचाराम ग्रामोफोनपर पीलू रागिनीकी शहनाईका रेकर्ड चढ़ाकर स्तब्ध होकर सुनते हैं, और मंजरी भंडारघरके बरामदेमें बैठकर बैंगन काटते हुए उँगली तक काट डालती है।

नदीमें ज्वार उतर गई, पानी हट गया और दोनों किनारोंपर टूटी हुई ईंटोंका अस्थि-पंजर दिखलाती हुई घाटकी सीढ़ियाँ एकके बाद एक निकल आईं। लेकिन ऐसा हुआ क्यों?

इसका विस्तृत विवरण इस कहानीके प्रसंगमें अनावश्यक है। फिर भी संक्षेपमें थोड़ा-सा आभास देनेसे हमारे इस नश्वर जगतकी नश्वरतर प्रेम-मरीचिकाके सम्बन्धमें पाठक-पाठिकाएँ कुछ सावधान हो जायँगी, इसीलिए बतलाता हूँ।

पुष्पशय्याकी रातसे ही आरम्भ किया जाय!

चाँदनी रात। मकानके आँगनमें नीमके पेड़पर एक निशाचारी उल्लू पक्षी-भाषामें अपनी प्रेयसीका नाम लेकर पुकार रहा था। बेचारामकी बुआजी बरामदेमें खड़ी हुई 'धत-धत' करके उसे उड़ानेकी कोशिश कर रही थीं। छतपर सबसे ऊपरके कमरेमें फूलोंसे सजी सेजपर लेटे हुए बेचाराम बाबू पीठ खुजाते हुए नववधूके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सीढ़ियोंपर दबी हुई हँसी, पैरोंकी सतर्क चाप और तालीके गुच्छेकी झनकार सुनाई देती थी। धीरे-धीरे सारी आवाज़ें शान्त हो गईं, और दो मिनटके भीतर सीढ़ीके दरवाज़ेके पास किसीकी चूड़ियोंकी 'टुन-टुन' सुनाई दी। उसके बाद ही हाथमें बेलेके फूलोंकी माला लिये नववधू मंजरीने कमरेमें प्रवेश किया; पल-भरमें बेचाराम बाबू निद्रित होकर नाक बजाने लगे। वधू मंजरीने देखा, स्वामी सो रहे हैं। उसने चटसे बत्ती बुझा दी। बेचाराम बाबूने हड़बड़ाकर कहा—"यह क्या! बत्ती क्यों बुझा दी?"

मंजरीने कहा—"तुम तो सो रहे थे?"

बेचाराम विपदमें पड़ गये, बोले—"नींद नहीं, तन्द्रा थी। बत्ती जला दो, तुम्हें देखूँ तो तनिक!"

मंजरीकी उम्र उस समय सत्रह वर्षकी थी। 'लैम्ब्स टेल्स फ्राम शेक्सपियर' पढ़कर समाप्त कर चुकी थी। तनिक हँसकर बोली—"अब और क्या देखोगे? दिन-भर तो खिड़कीसे छिप-छिपकर देख चुके हो!"

बेचारामने कहा—"एक बार फिर देखूँगा!"

"देखो"—कहकर मंजरीने स्विच दबा दिया। उस दीपालोकित कमरेमें पुष्पशय्यापर बैठकर दोनोंने एक दूसरेको बताया कि जगतमें यदि और कुछ भी न रहे, तो भी वे एक-दूसरेसे प्रेम करके जीवित रहेंगे। घर न रहे तो जंगलमें जाकर और अन्न न रहे तो फल-मूल खाकर जीवन बितायेंगे। तौलिया न होगी, तो मंजरी अपने केशोंसे बेचारामके पैर पोंछेगी, और महावर न होगा, तो बेचाराम अपने हृदयके रक्तसे मंजरीके चरण-पल्लव रँगेंगे। बेचारामको सिर्फ एम०ए० पास करना ज़रूरी है, नहीं तो पिताजी बुरा-भला कहेंगे। मंजरीने कहा कि बेचारामको पाकर उसका नारी-जीवन सार्थक हो गया है। यदि वह मैट्रिकुलेशन पास कर ले, तो उसके जीवनकी और कोई साध बाक़ी न रहेगी।

लेकिन जिस तरह पेड़के सभी आम नहीं पका करते, उसी तरह जीवनकी सब साधें भी पूरी नहीं होतीं। बेचाराम और मंजरीकी साधको भी भगवानने बाद दे दिया। मैट्रिकुलेशन परीक्षाके ठीक पन्द्रह दिन पहले बेचारामकी बुआजी भतीजेके सिरपर हाथ रखकर आशीष देती हुई परलोक सिधारीं। अपने पिताके घर 'ज्यामेट्री' के साध्य हल करते हुए मंजरीने यह खबर सुनी। वह रोने लगी। दूसरे दिन उसके ससुर तुलाराम बाबू स्वयं

उसे बुलानेके लिए आये। मंजरी बक्समें अपनी किताबें बन्द करके रोती हुई फुफुआ सासके रिक्त स्थानकी पूर्तिके लिए ससुराल आई।

क्रिया-कर्म, श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन, कंगाली-भोजन और अन्तमें मातमपुर्सीके लिए आनेवाले रिश्तेदारोंके झमेलोंसे जब छुट्टी मिली, तब मंजरीको याद आई कि इस वर्षकी मैट्रिकुलेशन परीक्षा भी समाप्त हो चुकी है। वह अपने कमरेमें जाकर कुर्सीपर बैठकर रोने लगी। पीछेसे बेचारामने आकर अत्यधिक प्रेमावेशमें कुर्सी-समेत उसका आलिंगन किया और कहा—"रोओ मत, मैं स्वयं तुम्हें पढ़ाकर अगले साल मैट्रिक पास करा दूँगा।"

मंजरीने आँसू पोछते हुए कहा—"इस वर्ष मुझे स्कालरशिप मिलता!"

बेचारामने कहा—"अगले वर्ष मेडल मिलेगा!"

पतिके प्रेममें मुग्ध होकर मंजरी उस समय परीक्षाकी बात भूल गई। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि अनेक प्रकारकी रुकावटोंके कारण बेचाराम बाबू भी उस साल एम० ए० की परीक्षामें पास न हो सके।

परीक्षाका नतीजा जिस दिन निकला, उस दिन बेचाराम बाबू पिताके सामने ही न गये। चुपकेसे रिक्शेपर बैठकर बागबाज़ार अपनी ससुराल चले गये। मंजरी उस समय छतपर रेलिंगके सहारे खड़ी हुई बगलके मकानकी खिड़कीको लक्ष्य करके किसीसे कुछ कह रही थी। स्वामीके पैरोंकी आवाज़ सुनकर उसने सिर घुमाकर पूछा—"नतीजा निकला?"

बेचारामने कहा—"फेल हो गये।"

मंजरीका मुँह सूख गया। कहने लगी—"इतनी-इतनी मुसीबतें पड़ीं, नहीं तो तुम्हारे-जैसा लड़का—"

बेचाराम बाबूने कहा—"इस कारण नहीं। तुम परीक्षा न दे सकीं, और मैं तुम्हारा अभिन्न हृदय पति ठहरा। फिर भला मैं अकेले कैसे परीक्षा पास कर लेता? इसीलिए फेल—"

मंजरी स्वामीके इस अपूर्व पत्नी-प्रेममें विभोर हो उठी। उसने चकित दृष्टिसे एक बार आसपासके सारे मकानोंकी छतोंको भलीभाँति देखकर बेचारामकी छातीमें मुँह छिपा लिया। उसके बाद छतपर बैठकर दोनोंने प्रतिज्ञा की कि अगले साल दोनों-के-दोनों परीक्षा पास करके ही रहेंगे। उसके लिए यदि कालीजीमें तीन जोड़े बकरे भी चढ़ाने पड़ें, तो मंजूर है। मंजरी हाथ-खर्चके लिए जो महीना पाती है, उसीसे पैसा बचा-बचाकर बकरे खरीद देगी।

परीक्षाका फल सुनकर तुलाराम बाबू पुत्रसे तो कुछ नहीं बोले; हाँ, पुत्रवधूको बुलाकर कहा—"बहू, तुम कुछ देख-भाल रखो! तितल्लेके सबसे ऊपरवाले कमरेमें वह पढ़ेगा और तुम दुतल्लेके छज्जेपर बैठकर काम-काज करना, सब देखना-भालना और पहरा देना, समझीं?"

मंजरीने दाँतोंसे ओंठ दबाकर हँसी रोकते हुए गर्दन हिलाई।

लिहाज़ा बेचाराम बाबूको गृहस्थ होकर भी संन्यासी बनना पड़ा। वे तितल्लेके सबसे ऊपरवाले कमरेमें वानप्रस्थ ग्रहण करके अध्ययनमें संलग्न हुए; लेकिन स्वभाव-दोष न छोड़ सके। एक पन्ना पढ़ते ही सीढ़ीकी तरफ मुँह करके पुकारते—"अरे, सुनती हो?"

मंजरी दुतल्लेसे जवाब देती—"सुनती हूँ।"

"ज़रा मेरे पैरके तलुवे तो मल दो, बड़ी नींद मालूम होती है।"

मंजरी कहती—"लेकिन बाबूजी घर ही पर हैं।"

पिता घर ही पर हैं, यह सुनते ही बेचाराम बाबूकी नींदका वेग अपने ही आप ग़ायब हो जाता, और वे खूब ज़ोर-ज़ोरसे पढ़ने लगते; लेकिन दस मिनट पढ़नेके बाद ही फिर पुकारते—"अरे, सुनती हो, बाबूजी बाहर गये ?"

स्वामीसे बार-बार झूठ बोलना महापाप है, इसीलिए मंजरी कहती—"हाँ, क्यों ?"

"छतपर एक कौवा बहुत काँव-काँव कर रहा है, ज़रा ऊपर आकर उसे उड़ा तो दे, मेरी रानी !"

बेचाराम बाबूकी रानी दुतल्लेके छज्जेपर ही खड़ी होकर काल्पनिक कौवेको उड़ानेके लिए 'हुश-हुश' करती। बेचाराम बाबू क्षण-भर तक कान लगाये सुनते रहते, फिर पुकारते—"अरे, ज़रा आकर खिड़की तो बन्द कर दो।"

मंजरी कहती—"मैं न आ सकूँगी। हिस्ट्री पढ़ रही हूँ !"

बेचाराम बाबू और कुछ न कहकर तकियेको छातीपर रखकर आँखें बन्द करके पड़ रहते। इधर मंजरी दाहना कान नीचे तुलाराम बाबूके बैठकेकी ओर और बायाँ कान बेचाराम बाबूके तितल्लेकी सीढ़ीकी ओर लगाकर, दुतल्लेके छज्जेपर बैठी हुई, सन् '५७ के ग़दरके कारणोंको याद करनेकी व्यर्थ चेष्टा करती। अन्तमें क्रुद्ध होकर 'मैट्रिकुलेशन हिस्ट्री आफ इंडिया' को पानके डब्बेके ऊपर पटक देती और नीचेकी सीढ़ीकी जंज़ीर चढ़ाकर तितल्लेपर जा मौजूद होती।

फिर बेचाराम बाबूके सिरपर हाथ फेरते हुए कहती—"क्यों, क्या ख़फ़ा हो गये ?"

बेचाराम बाबू मुँह उठाये बिना भारी आवाज़में कहते—"जाओ, जाओ, हिस्ट्री पढ़ो—मरे हुए लोगोंके नाम रटो !"

मंजरी बेचाराम बाबूके छोटे तकियेपर अपना सिर रखने-भरकी जगह निकालकर कहती—"अब ऐसा न करूँगी। इस बार माफ़ कर दो !"

बेचाराम बाबू मजबूर होकर माफ़ कर देते, और उसके बाद आधे पहर तक दोनोंमें बातचीत होती रहती, जिसका 'डाक्ट्रिन आफ लैंस' अथवा 'केबाल्स मिनिस्ट्री' से कोई सम्पर्क न होता था। बातचीत खतम होनेके पहले ही नीचेकी सीढ़ीकी जंज़ीर झनझना उठती और मीठे स्वरमें आवाज़ आती—"बहू !"

मंजरी झटपट नीचे उतरकर सामने जो-कुछ पाती—सुई-धागा, पानका डब्बा, घीकी हाँडी—उसीको बाएँ हाथमें लेकर दाहनेसे जंज़ीर खोल देती। तुलाराम बाबू मुसकराते हुए पूछते—"बेचू पढ़ रहा है तो ?"

मंजरी करती—"हूँ।"

तुलाराम बाबू कहते—"अच्छा, अब नहा-खा ले ! ज़्यादा पढ़ना भी अच्छा नहीं ! जाओ, बुला दो।"

मंजरी बेचाराम बाबूको बुला देती। बेचाराम हाथसे माथेकी रगें दबाते हुए नीचे उतरते। तुलाराम बाबू कहते—"सिर तो झनझनायेगा ही। एक साथ ज़्यादा पढ़नेसे दिमाग़ चक्कर खाने लगता है। थोड़ी देर पढ़ा करो और थोड़ी देर टहला करो—छतपर—"

बेचाराम बाबू "जी, अच्छा।" कहकर गुसलखानेमें नहाने चले जाते।

× × × ×

मार्चमें मैट्रिकुलेशनकी परीक्षा होगी और जुलाईमें एम० ए० की। अचानक एक दिन दिसम्बरमें मंजरीने बड़े उदास मुँहसे बेचाराम बाबूसे आकर कहा—"इस बार भी परीक्षा न दे सकूँगी।"

बेचारामने सिकुड़कर कहा—"देखो, यदि किसी तरह दे सको!"

मंजरीने उँगलीकी पोरें गिनी, और रुआँसी-सी होकर; बोली—"किसी तरह नहीं हो सकता!"

बेचाराम बाबूने हतबुद्धि होकर केवल इतना ही कहा—"तो फिर!" और सिर खुजलाते हुए पेंसिल खरीदनेके लिए बाहर चले गये।

मैट्रिकुलेशन परीक्षाके कई दिन पहलेसे ही मंजरीको अटकाव हो गया। परीक्षाके कई दिन बाद एक दिन बेचाराम बाबूने बहुत करुणा-भरे मधुर स्वरसे उससे कहा—"इस बार परीक्षा देतीं, तो निश्चय ही तुम मेडल पातीं।"

मंजरीने पीले कपड़ेमें लिपटी हुई नवजात कन्याको बेचाराम बाबूकी ओर बढ़ाकर तीखे स्वरमें कहा—"यही तो मेडल दिया है!"

बेचाराम बाबू अत्यन्त अपराधीकी भाँति मुँह नीचा करके हट आये। कुछ दिनों तक फिर परीक्षाकी न बात चली। छै महीने बाद एक दिन बेचाराम बाबूने हँसते-हँसते आकर कहा—"मैं सेकेण्ड डिवीजनमें पास हुआ!"

मंजरी पहले तो खूब प्रसन्न हुई; किन्तु क्षण-भर बाद ही उसकी पतिभक्तिमें धक्का लगा। सहसा उसके मनमें विचार आया कि बेचाराम दग़ाबाज हैं, स्वार्थी हैं—मंजरीको नारी-जन्म सार्थक करनेके कामपर नियुक्त करके खुद स्वच्छन्दतासे परीक्षा देकर पास हो गये!

मंजरीके हृदयमें पहली बार ईर्ष्याका खरोंचा लगा। अगले वर्ष ट्रामसे गिर पड़नेके कारण ठीक मार्चके महीनेमें ही तुलाराम बाबूका देहान्त हो गया; जिससे मंजरीके हृदयमें लगा हुआ वह खरोंचा एक सूक्ष्म रेखासे बढ़कर खासा दाग़ बन गया। उसके बादवाले वर्षमें ठीक मार्च मासमें, प्रथम वर्षके समान ही, मंजरीको पुनः अटकाव हुआ। बेचाराम बाबू पुत्र उत्पन्न होनेके दूसरे ही दिन, मंजरीके डरसे, अपनी सासको उनकी कन्याका भार देकर पुरी चले गये। चौथी साल मार्चमें लड़कीको इन्फ्लूएंज़ा हो गया। पाँचवीं साल ठीक मार्चके महीनेमें बच्चा टाइफायडसे बीमार हुआ। इसी प्रकार मंजरीके विवाहित जीवनके चौदह मार्च मास निकल गये, और मंजरीके हृदयमें लगे हुए उस खरोंचेका दाग़ धीरे-धीरे बढ़कर चौदह इंच लम्बा घाव बन गया। मंजरी मैट्रिकुलेशनकी परीक्षा न दे सकी। हाँ, अब उसकी लड़की हैंडबेगमें किताबें-कापियाँ भरकर रोज़ ब्राह्म गर्ल्स स्कूल जाती-आती है।

× × × ×

जीवन-नदीके भाटेके उतारमें इसी प्रकार एक दिन हमारी कहानीकी एक घटना घटी थी।

बड़े दिनकी छुट्टियाँ थीं। शिमला, बम्बई, वाल्टेयर, दिल्ली, कानपुर आदि स्थानोंसे मंजरीकी बाल्यकालकी सखी-सहेलियाँ अपने-अपने पतियोंके वेतनोंके अनुसार दुबले-मोटे शरीर लेकर कलकत्ता घूमने आई थीं। कलकत्तेमें उस साल अखिल भारतीय शिल्प-प्रदर्शिनी हो रही थी। प्रथम श्रेणीके तमाम होटलोंने अपने-अपने दरवाज़ोंपर 'जगह नहीं है' के नोटिस

लउका रखे थे और कलकत्तेके बाज़ारमें मुर्शिदाबादी रेशमी साड़ियोंके दाम रुपयेमें दो आनेके हिसाबसे चढ़ गये थे।

उक्त शिल्प-प्रदर्शिनीमें एक दिन शामको मंजरी अपनी लड़कीके साथ घूम रही थी। इतनेमें लगभग उसीकी उम्रकी एक महिला उसके सामने आकर खड़ी हो गई और पूछने लगी—"क्यों बहन, तुम तो मंजरी हो न?"

आगन्तुका महिलाके पैरोंमें ज़रीके कामका दिल्लीवाल जूता और पोशाकमें पारसी साड़ीमें घाँघरे-जैसी लहरियाँ देखकर मंजरीने पहले तो सोचा कि शायद कोई बाईजी हैं; लेकिन दूसरे ही क्षण उसके स्मृतिपटपर बाल्यकालकी एक अस्पष्ट मूर्ति जग उठी। परन्तु वह मूर्ति अत्यन्त दुबली-पतली थी और सामने खड़ी हुई महिला खूब मोटी-ताज़ी, इसलिए असमंजसमें मंजरी यह निश्चित न कर सकी कि वह क्या कहे। आगन्तुकाने हँसकर कहा—"बहन, मुझे नहीं पहचाना? मैं हूँ सरोज!"

मंजरीने हँसकर कहा—"बहन, बात यह है कि तुम खूब मुटा गई हो।"

सरोजनीने कहा—"वे भी यही कहा करते हैं; लेकिन इसको मैं क्या करूँ, तुम्हीं बताओ, बहन!"

यह कहकर सरोजिनीने कोई बारह वर्गगज़के आकारका एक फूलदार रेशमी रूमाल निकालकर घासपर बिछा दिया और दोनों सखियाँ उसी तृणशय्यापर बैठकर बातें करने लगीं।

देखते ही देखते सरोजिनीकी सहेली मृणालिनी, मृणालिनीकी सखी कमलिनी, कमलिनीकी बहनापिन सुहासिनी इत्यादि कोई आधा दर्जन

नारियाँ आ-आकर सखीत्वके सूत्रमें गुँथी हुई एक पुष्पमालाकी भाँति मंजरीके चारों ओर घेरकर बैठ गईं। उनके पतिगण कुछ दूर एक बड़के पेड़के नीचे खड़े-खड़े ऊर्ध्व नेत्रोंसे पेड़की डालियोंकी संख्या निश्चित करते हुए सभा भंग होनेकी प्रतीक्षा करने लगे। आधा पहर रात बीत चुकनेपर हँसीके ठहाकोंके बीच सभा भंग हुई। एकत्रित सहेलियोंमें चूँकि सिर्फ मंजरी ही कलकत्ता-वासिनी थी, इसलिए उसने उन सबको अगले दिन तीसरे पहर अपने घर आनेका निमन्त्रण देकर विदा ली।

रास्तेमें आते हुए मंजरी एक बार अपनी हालतपर विचार करने लगी। उसने सोचा कि वही सबसे अधिक अभागिन है। सबके पति अपनी-अपनी पत्नियोंको साथ लेकर प्रदर्शिनीकी सैरको आये हैं, और उसके साथ कौन आया है? जग्गू कोचवान, महादेव दरवान और बुधुआ साईस! मंजरीका यह मानसिक विलाप समाप्त होनेके पहले ही गाड़ी घरके फाटकमें दाखिल हो गई। बेचाराम बाबू उस समय बड़ी बेचैनीसे इस कमरेसे उस कमरेमें टहल रहे थे और रह-रहकर श्यामा महरीको डाँट रहे थे कि वह मालिकिनके साथ क्यों नहीं गई। मंजरीको देखकर उन्होंने प्रसन्नतासे कहा—"जो हुआ सो हुआ, तुम आ गईं?"

मंजरी तब तक अपने दुर्भाग्यकी बात नहीं भूल सकी थी, बोली—"न आती, तो ही भला था!"

बेचाराम बाबूको और कुछ कहनेकी हिम्मत न हुई। लड़कीको बुलाकर चुपकेसे पूछा—"जान पड़ता है, तेरी मा रुपया नहीं ले गई थी?"

"मैं नहीं जानती,"—कहकर लड़की भाग गई। बेचाराम बाबूने नीचे आकर साईससे मालूम किया कि घोड़ेने रास्तेमें कोई बदमाशी

भी नहीं की थी। तब एकाएक मंजरीके इस रुद्ररूपका कारण क्या है? जब कुछ समझमें न आया, तो झटपट खा-पीकर बेचाराम बाबू सो रहे।

दूसरे दिन मंजरीके रुद्ररूपका कारण अपने-आप बेचाराम बाबूकी आँखोंके सामने प्रातःकालीन सूर्यकी भाँति प्रत्यक्ष हो गया।

उस समय बेचाराम बाबू भोजनके बाद नींद ले रहे थे। अचानक सीढ़ियोंपर बहुत-से पैरोंकी आवाज़, चूड़ी और कंगनोंकी झनकार, रेशमी साड़ियोंकी खसखसाहट और मधुर हँसीकी खिलखिलाहट सुनकर वे चौंक पड़े और उठकर चारपाईपर बैठ गये। दूसरे ही क्षण "आओ बहन, आओ"; "वाह, यह साड़ी तो तुम्हें खूब सोहती है!"; "वह कै तोलेकी है?"; "मज़दूरी कितनी ली?"; "इसका पन्ना कै रत्तीका है?"; "तुम्हें तुम्हारे उन्होंने आने तो दिया?"—इस प्रकारके विचित्र प्रश्न सुनकर बेचाराम समझ गये कि मंजरीके कमरेमें सखी-सम्मेलन हो रहा है।

बाहर जानेमें मंजरीके कमरेका तीन तरफसे सामना पड़ता था, और बेचाराम बाबूने फुरसत न मिलनेके कारण पिछले पाँच दिनसे दाढ़ी न बनाई थी, इसलिए कमरेसे बाहर न निकल सके और बिछौनेपर आँखें मूँदे लेटकर बगलके कमरेमें होनेवाली स्वामी-गृह, विवाह, गहने, कपड़े आदिकी आलोचना सुनने लगे।

सुनते-सुनते बेचाराम बाबूको तन्द्रा आ गई थी, सहसा मंजरीका उच्च कंठ-स्वर सुनकर वह भंग हो गई। मंजरी कह रही थी—"तुम्हारे पतिने मास्टर रखकर तुम्हें पढ़वाकर मैट्रिक पास करा दिया—तुम्हारा भाग्य अच्छा था, कहीं मेरे पति-जैसे आदमीके पाले पड़तीं, तो पहली किताबमें ही सारी पढ़ाई खतम हो जाती। अब मैं क्या पास करूँगी?"

बेचाराम बाबूके आत्म-सम्मानको धक्का लगा। क्रोध भी आया ; लेकिन क्रोध आनेपर वे ग्रीक दार्शनिकके उपदेशके अनुसार ध्यान बँटानेके लिए एकसे सौ तक गिनती गिनते थे। आज भी उन्होंने वही तरकीब की ; किन्तु जब देखा कि हज़ार तक गिनती गिननेपर भी क्रोध शान्त न हुआ, तो छतपर जाकर इधर-से-उधर टहलने लगे। धीरे-धीरे शाम हो गई। मंजरीकी अतिथि-मंडली भी मोटरोंपर सवार होकर विदा हुई। छतसे बेचाराम बाबूने यह देखा। फिर वे धीरे-धीरे उतरकर नीचे आये। मंजरीने पूछा—"दो ठो पूरियाँ खाओगे ?"

बेचाराम बाबूने कहा—"नहीं।" और नीचे बैठकेमें जाकर एक चिट्ठी लिखकर श्यामा महरीके हाथ मंजरीके पास भेज दी। मंजरीने भौंहें सिकोड़ते हुए पढ़ा—

"तुमने मेरा अपमान किया है। मैंने मास्टर लगाकर तुम्हें पढ़वाकर मैट्रिक पास नहीं करवाया, यह बात इन सब महिलाओंमें फैलाई। कल ये सब स्त्रियाँ अपने-अपने पतियोंसे यह बात कहेंगी और पतियोंके मुँहसे उनके बन्धु-बान्धव लोग सुनेंगे। पहले कलकत्ते शहरमें, फिर दिल्ली, आगरा, देहरादून, शिमला, कानपुर, बम्बई, मदरास आदिमें मेरी बदनामी फैलेगी। लोग समझेंगे कि मैं अपनी स्त्रीको कष्ट देता हूँ। मैंने जान-बूझकर उसे अशिक्षित और जंगली बना रखा है। इसलिए मैं तुम्हारा पति होनेके योग्य नहीं हूँ ; अतः आजसे मैं बैठकेमें सोऊँगा और नीचे ही भोजन आदि करूँगा। इति—

बेचाराम।"

मंजरीकी आँखें लाल हो गईं, बोली—"बहुत अच्छा!"

भोजन समाप्त करके बेचाराम बाबू बैठकेमें लेटे हुए खटमलोंके मारे इधर-से-उधर करवटें बदल रहे थे, इतनेमें श्यामा महरी एक चिट्ठी लिये आ मौजूद हुई। बेचाराम बाबूने पढ़ा—

"तुम्हारी चिट्ठी मिली, सब बातें ज्ञात हुईं। तुम्हारे लड़के-लड़कियोंको खिलाने, पहनानेमें ही मेरी ज़िन्दगी अकारथ हुई, ऊपरसे तुम्हीं गुस्सा दिखलाते हो! मैं कलसे तुम्हारे साथ न रहूँगी। इन उधमी लड़के-लड़कियोंको कैसे सम्हालते हो, सो देखूँगी। जब तक दाँत रहते हैं, तब तक लोग दाँतोंका मूल्य नहीं समझते। इति—

मंजरी देवी।"

पहले तो बेचाराम बाबूका सिर चकरा गया; लेकिन फौरन ही उन्होंने आत्म-संवरण करके श्यामा महरीसे कहा—"बहुत अच्छा!"

× × × ×

तरह-तरहकी चिन्ताओंसे और निष्ठुर खटमलोंके काटनेसे बेचाराम बाबूको रात-भर नींद न आई। तड़के उनकी आँख लग गई, और वे सो गये। उनकी नींद टूटी छोटे लड़केकी चिल्लाहट सुनकर। लड़का आकर बेचाराम बाबूका हाथ खींचते हुए कह रहा था—"बाबूजी, भूख लगी है!"

उनींदी आँखोंको थोड़ा-सा खोलकर उन्होंने कहा—"परेशान न करो, जाओ, अपनी माके पास जाओ।"

लड़केने कहा—"मा तो नहीं हैं।"

बिच्छूका डंक लगनेसे जैसे कोई उछल पड़ता है, उसी तरह बेचाराम बाबू उछलकर पलंगपर बैठ गये। पिछली रातकी सारी बातें उनके दिमाग़में दौड़ गईं। झटपट दुतल्लेपर पहुँचे। देखा, दुतल्ला सूना पड़ा है—केवल बड़ी लड़की बैठी ड्राइंग बना रही है और बड़े लड़के और छोटी लड़कीने मिलकर पिताके फटे हुए जूते और चट्टियाँ इकट्ठा कर रखी हैं, जिनकी सहायतासे वे मंजरीके दूध-से उजले बिछौनेपर जूतोंका मीनार बनानेमें जुटे हैं! बेचाराम बाबूको देखते ही बड़ी लड़की बोली—"स्कूलकी फीस दीजिए, बाबूजी! फीस लेकर ही आज मैं घरसे निकलूँगी। बार-बार माँगते अच्छा नहीं लगता।"

बेचाराम बाबूने पूछा—"तुम्हारी मा—?"

बड़ी लड़कीने कहा—"मा नहीं दे गई; कह गई हैं कि जो-कुछ लेना हो, बाबूजीसे लेना। यह लीजिए, आपके टूटे बक्सकी चाबी दे गई हैं।"—यह कहकर उसने पिताके हाथपर एक चाबी फेंक दी।

बेचाराम बाबूने पूछा—"कहाँ गई हैं?"

बड़े लड़केने कहा—"बागबाज़ार! और कहती थीं कि अगर आप उधरको मुँह करें तो—"

बड़ी लड़कीने उसे डाँटकर कहा—"चुप रह! बापसे कहीं वैसी बात कही जाती है? सुनिये बाबूजी, मा कहती थीं कि अगर आप बागबाज़ारकी तरफ जायँगे, तो मा बहुत नाराज़ होंगी और कलकत्ता छोड़कर कहीं चली जायँगी—काशी भी जा सकती हैं; बम्बई भी जा सकती हैं।"

छोटी लड़की बोली—"मा कहती थीं कि वे अब हम सबकी मा नहीं हैं; हम लोगोंकी नई मा आयेंगी। हाँ बाबूजी, नई मा कब आयेंगी?"

बेचाराम बाबूने कहा—"हूँ ! अच्छा !"

उसके बाद एक अलवान कन्धेपर डालकर बाहर जानेके लिए घरसे निकलने ही को थे कि इतनेमें बड़े लड़केने आकर कहा—"हम लोगोंको खानेको मँगा दीजिए, बाबूजी ! हमारे लिए खस्ता कचौड़ी और छोटी मुनियाँके लिए बिस्कुट।"

बड़ी लड़की और छोटा लड़का एक साथ ही बोल उठे—"और हमारे लिए गरम जलेबी।"

बेचाराम बाबू कुछ ठिठक गये, फिर बोले—"महरीको पुकारो !"

"महरी कहाँ है, बाबूजी ?"—बड़ी लड़कीने जवाब दिया।

"कहाँ गई ?"—बेचाराम बाबूने पूछा।

"वह तो आज सवेरे ही मासे छुट्टी लेकर उन्हींकी गाड़ीपर चली गई।"

अब बेचाराम बाबूने समझा कि क्या षड्यन्त्र है। कहा—"हूँ ! अच्छा, देखूँगा ! महराज, महराज !"

गनपत महाराज (रसोइया) आकर खड़े हो गये और विनम्रतासे पूछने लगे—"गोभीकी तरकारीमें लाल मिर्च डालें या नहीं ?"

बेचाराम बाबूने कहा—"नहीं। तुम ज़रा लड़के-लड़कियोंको कुछ खानेको तो ला दो।"

गनपतने कहा—"अब और क्या खायँगे, बाबूजी ! दस बजता है। सवेरे तो एक बार खा चुके हैं।"

बेचाराम बाबूने चारों भुक्खड़ोंकी तरफ़ क्रोधसे देखा और डाँटते हुए पूछा—"खाया था ?"

बड़ी लड़कीने कहा—"थोड़ा-सा।"

बेचाराम बाबू बोले—"तब रहने दो। तीसरे पहर ज़्यादा खा लेना।"

उस दिनसे बेचाराम बाबूने गृहस्थीपर ध्यान दिया। सब ठीक-ठाक करके लड़के-लड़कियोंके भोजनका समय और परिमाण एक काग़ज़पर बाक़ायदा लिखकर रसोईघरके दरवाज़ेपर चिपका दिया। साथ ही रसोइये और नौकरको जतला दिया कि सारे काम क़ायदेसे होने चाहिए। मालिकिन नहीं हैं, यह समझकर वे कुछ चालाकी करें, सो नहीं चलेगी।

रातमें बेचाराम बाबूको झपकी आना शुरू ही हुआ था कि छोटे लड़केने आकर कहा—"बाबूजी, मेरा लाल कुर्ता पहना दीजिए न।"

बेचाराम बाबूकी झपकी टूट गई—"रातमें कुर्तेका क्या होगा?"

छोटे लड़केने कहा—"नहीं तो मुझे नींद नहीं आती!"

बेचाराम बाबूने बड़ी लड़कीको आवाज़ दी, उसने जवाब दिया—"मेरा कान बहुत पिराता है, बाबूजी!"

बेचाराम बाबूने कहा—"अच्छा।"

सवेरे बैठकेमें आकर बैठते ही जग्गू कोचवानने आकर कहा कि घोड़ा दाना नहीं खाता है।

बेचाराम बाबूने कहा—"डाक्टरको दिखलाओ।"

जग्गू चला गया और शामको आकर खबर दी कि घोड़ा बहुत छटपटा रहा है।

बेचाराम बाबू धोबीके कपड़े गिन रहे थे, उन्होंने निर्विकार चित्तसे हुक्म दिया कि घोड़ा पिंजरापोल भेज दिया जाय!

दोपहरको बेचाराम बाबू सो रहे थे। उसी समय एक कान्स्टेबिल दोनों हाथोंसे छोटे लड़के और छोटी लड़कीका हाथ पकड़े आकर हाज़िर हुआ और उसने बताया कि बड़ी सड़ककी मोड़पर दोनों-के-दोनों खड़े हुए रो-रोकर बागबाज़ारका पता पूछ रहे थे। बेचाराम बाबूने कान्स्टेबिलको तो एक चवन्नी इनाम देकर बिदा किया ; किन्तु उन्होंने समझ लिया कि मोटर-गाड़ियोंसे भरे हुए इस कलकत्ते शहरमें इन उधमी बालक-बालिकाओंको लेकर रहना बड़ा खतरनाक है। फौरन दरवानको बुलाकर टाइम-टेबिल खरीदनेके लिए हवड़ा स्टेशन रवाना किया।

टाइम-टेबिलके पन्ने उलट-पलटकर और क़ानून-क़ायदे देख-सुनकर बेचाराम बाबूने क्या निश्चय किया, यह तो वही जानें। शामको एक बक्स होमियोपैथिक दवाएँ, एक टोकरी नारंगियाँ और 'होमियोपैथिक चिकित्सा-विज्ञान' की ग्यारह जिल्दें खरीदकर जब वे घर लौटे, तो देखा कि दुतल्लेपर खूब शोर-गुल मच रहा है। हाँडी-भर रसगुल्ला सामने रखे उनके दोनों लड़के और दोनों लड़कियाँ बड़ी धूमधामसे खानेमें जुटी हैं! बेचाराम बाबू चुपचाप खड़े हो गये, और आँखें मींचकर सोचने लगे कि बहुत ज़्यादा रसगुल्ले खानेसे यदि पेटमें दर्द हो, तो 'नक्स वोमिका' देना चाहिए या 'पल्सेटिला'। इसी समय बड़े भाईकी बराबरी करनेकी कोशिशमें छोटे लड़केने एक साथ ही दो रसगुल्ले मुँहमें ठूँस लिये, जिससे उसकी आँखें चढ़ गईं। यह देखते ही बड़ी लड़की चिल्ला उठी—"मरेगा क्या, उगल-उगल!"

छोटे लड़केने उसी हालतमें सिर हिलाते हुए अपनी अनिच्छा प्रकट की और चित होकर लेट गया। बड़ी लड़की रो उठी। ठीक उसी समय

कमरेके दरवाज़ेकी आड़से श्यामा महरी झपटकर बाहर निकली और छोटे लड़केको गोदमें उठाकर उसके सिरपर पानी डालकर पंखा झलने लगी।

बेचाराम बाबूने पूछा—"तू यहाँ कैसे?"

श्यामा बोली—"मालिकिनने लड़के-लड़कियोंके लिए रसगुल्ले पठाये थे, उन्हींको—"

बेचाराम बाबूने कहा—"हूँ! लौटा ले जा!"

रसगुल्ले लौटा ले जानेकी बात सुनते ही छोटा लड़का उठ बैठा और बोला—"ऊँहूँ! वह हमारे हैं।" यह कहकर उसने ढाई सेर रसगुल्लोंमें से बचे हुए तीन रसगुल्लोंको घप-से मुट्ठीमें दबाकर नीचेकी सीढ़ियोंकी राह ली।

बेचाराम बाबूने उँगली उठाकर श्यामासे कहा—"हाँडी लौटा ले जा!"

श्यामा महरी चली गई।

सारी रात बेचाराम बाबूने तरह-तरहकी दलीलों और युक्तियोंसे विचार करके देखा कि कलकत्तेमें मंजरीकी ग़ैरहाज़िरीमें इन उधमी लड़के-लड़कियोंको साथ लेकर रहनेसे बहुत जल्द कोई आफ़त आयेगी। भविष्यकी बात सोच-सोचकर वे व्याकुल हो उठे।

दूसरे दिन सबेरे कार्ड-बोर्डके चार टुकड़ोंपर चारों सन्तानोंके नाम, पता, परिचय आदि लिखकर और चारों लड़के-लड़कियोंके गलेमें लटकाकर बेचाराम बाबूने आवाज़ दी—"महादेव, टैक्सी बुलाओ।"

बड़ी लड़कीने पूछा—"गलेमें टिकट क्यों लटकाया, बाबूजी?"

बेचाराम बाबूने कहा—"बाहर घूमने जाते हैं। वहाँ अगर कोई खो जाय, तो यह टिकट दिखानेसे लोग तुम्हें कलकत्ते इसी मकानमें पहुँचा देंगे। अगर रेल लड़ जाय और उसमें अगर मैं—समझी, तो

तुम लोगोंके गलेमें ये टिकट देखकर रेलवाले तुम्हारा पता-निशान जान सकेंगे। समझी ?"

बड़ी लड़की होशियार थी, सब कुछ समझ गई। बाहर घूमने जानेकी लालचमें खूब उत्साहित होकर उसने सामने जो कपड़े-लत्ते पाये, बाँध लिये। बेचाराम बाबूने जग्गूकी सहायतासे छै लिहाफ और सात तोशकोंका एक बड़ा भारी विस्तर बाँध डाला और एक टैक्सीपर माल-असबाब लादकर जग्गूको स्टेशन भेज दिया। फिर अपने कमरेमें ताला बन्द करके और मंजरीका कमरा खुला छोड़कर, महादेव दरवानको घरकी रखवालीका भार सुपुर्द करके, सिद्धदाता गणेशका नाम जपते हुए, लड़के-लड़कियोंका हाथ पकड़कर वे दूसरी टैक्सीपर जा बैठे।

बेचाराम बाबूने टिकट लिया मथुराका ; लेकिन बर्दवानमें गाड़ी पहुँचते ही एकाएक उन्होंने हाथके अखबारको मुट्ठीमें दबाकर कहा—"लड़को ! जल्दीसे उतर तो पड़ो।"

छोटा लड़का बोला—"भैया उतरो, बाबूजी सीताभोग* खिलायेंगे।"

बड़ी लड़कीने पूछा—"बाबूजी, यहाँ क्यों उतरते हैं ?"

बेचाराम बाबूने अखबार उसके ऊपर फेंक दिया और कहा—"पढ़कर देख न, मथुराके आसपास बहुत चूहे मर रहे हैं—क्या सब-के-सब प्लेगमें मरोगे ? उतरो-उतरो—"

छोटा लड़का इससे पहले ही प्लेटफार्मपर कूदकर सीताभोगवालेको पुकार रहा था। बेचाराम बाबू बाक़ी तीनोंको साथ लेकर उतर पड़े। प्लेटफार्मपर खड़े होकर कुछ देर तक वे सोचते रहे कि आसपासके स्वास्थ्यकर स्थानोंमें तो

* सीताभोग—एक मिठाई है, जो बर्दवानमें बहुत अच्छी बनती है।

उत्तरपाड़ा है—वहाँ गंगा-किनारे उनके स्वर्गीय पिताका एक बगीचा और बँगला भी है। वे सोच ही रहे थे, इतनेमें एक डाउन पैसेंजर आ गई। झटपट एक सेर सीताभोग खरीदकर वे उसी गाड़ीपर सवार हो गये, और ठीक समयपर उत्तरपाड़ेमें उतरकर बीहड़से घिरे हुए 'तुलाराम-उद्यान'में जाकर आसन जमाया।

× × × ×

जग्गू ठहरा नमकहलाल कोचवान। जैसे ही मालिककी गाड़ी डिस्टैन्ट सिगनलके पार निकली, वैसे ही टैक्सीपर बैठकर वह सीधा बागबाज़ार पहुँचा और मालिकिनको खबर दी कि आज सवेरे बेटे-बेटियोंके साथ मालिकने मथुराजीको कूच किया है। मंजरीके हाथसे गरम जलेबीका दोना छूट पड़ा। उसके मुँहसे आवाज़ भी न निकल सकी! किसी अज्ञात अनिष्टकी आशंकासे गुमसुम होकर वह बैठी रह गई। मथुराके पंडे डाकू होते हैं, यह बात उसने छुटपनमें अपनी नानीसे सुनी थी। उसके मनमें जान पड़ने लगा कि अब तक पंडोंने मारकर बड़ी लड़कीके गलेका हार और छोटी लड़कीकी कमरकी करधनी आदि सब छीन ली होगी। सोचते-सोचते वह डरके मारे रो उठी और बोली—"तू साथ क्यों नहीं गया?"

जग्गूने कहा—"मालिक ले ही नहीं गये, तो क्या करें? नहीं तो इस बुढ़ापेमें मथुराजीके दर्शन—"

मंजरीकी माने आकर सब सुना, तो अपने पुत्रसे कहा—"हरी, तू जा। उधमी बच्चोंको साथ लेकर परदेशमें अकेले आदमी—"

हरीको देश-विदेश घूमनेका बड़ा शौक़ था। पैसा न होनेके कारण वह कहीं जा नहीं सका था, फिर भी उसने भारतवर्षकी तमाम

रेलवे कम्पनियोंके टाइम-टेबिल पढ़-पढ़कर हिफ्ज़ कर डाले थे। माताका प्रस्ताव सुनते ही उसने बड़े उत्साहसे कहा—"यह तो बहुत ज़रूरी है—"

"उनसे भेंट होते ही मुझे एक तार दे देना, समझा?" कहकर मंजरीने हरीके हाथपर सौ रुपयेकी एक पोटली रख दी। हरी हाथमें एक सूटकेस लटकाकर हवड़ाकी बसपर सवार हो गया।

उसी समय बाहर दरवाज़ेपर आकर एक भिखारीने गाना शुरू किया :—

ब्रजकी अब बैरिन भईं कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भईं विषम ज्वालकी पुंजैं।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं;
'सूरदास' प्रभुको मग जोहत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं।
ब्रजकी अब बैरिन भईं कुंजैं।

सुनकर मंजरी सिहर उठी। बोली—"बापरे, कैसे कुलक्षणका गीत है! जग्गू, निकाल दे इस अभागेको!"

भिखारी बड़बड़ाता हुआ चला गया; लेकिन गीतका अन्तिम चरण मंजरीके मनमें रह-रहकर हथौड़ेकी तरह चोट करने लगा। आखिरकार अधीर होकर श्यामा महरीको साथ ले, आँसू पोंछती हुई मंजरी टैक्सीपर चढ़कर पतिके घरकी ओर रवाना हुई।

घर पहुँचकर मंजरीकी चिन्ता तिगुनी हो गई। देखा कि बेचाराम बाबू गरम ओवरकोट नहीं ले गये हैं। लड़के-लड़कियोंके चालीस जोड़ी ऊनी मोज़े कमरे और बरामदेमें बिखरे पड़े हैं।

मंजरी रो-रोकर श्यामासे कहने लगी—"मुझे कैसी सज़ा मिली है, श्यामा ! ऐसी सर्दीके दिनोंमें गरम कपड़े, मोज़े—सब कुछ फेंककर वे चले गये !"

श्यामाने दिलासा देते हुए कहा—"इसकी फिक्र न करो। साथमें रुपया-पैसा है ही, जो चाहेंगे, खरीद लेंगे।"

मंजरीने कहा—"वह कुछ कलकत्ता शहर थोड़े ही है श्यामा, जो पैसा फेंकते ही चीज़ मिल जाय ? क्रोध करके मैंने कैसी मुँहकी खाई।" यह कहकर मंजरीने चारपाई पकड़ी, श्यामा उसके पैर सुहराने लगी।

× × × ×

उत्तरपाड़ेके बग़ीचेवाले बँगलेके सामने गंगाजीके घाटपर बैठकर बेचाराम बाबू अपने जीवनपर विचार कर रहे थे। ओह, कैसा दुखपूर्ण, अनियमित जीवन है ! प्राणोंसे प्यारी पत्नी—जिसके साथ आजसे दस वर्ष पहले, रातके सन्नाटेमें, इसी गंगाके इसी घाटपर कितने ही बार साथ-साथ तैरे थे, सुर-में-सुर मिलाकर प्रेमके गीत गाये थे, वही पत्नी आज विमुख हो गई है ! बड़ी लड़की जभी खाना बनाने जाती है, तभी उसे नींद आ जाती है ; बड़ा लड़का मौक़ा पाते ही बाग़के उड़िया माली सहदेवके औज़ारोंको गंगामें गड़ाप कर देता है ; रोज़ सवेरे दो आनेकी पावरोटी और डेढ़ पाव राबके बिना छोटे लड़केका कलेवा ही नहीं होता, छोटी लड़की जुगुनू देखते ही डरके मारे चिचियाकर रोने लगती है। बाग़में रात-भर मच्छरोंकी भन-भन और मेढकोंकी टर्र-टर्र एक स्वरसे जारी रहती है। सहदेव माली गहरी नींदमें सोते-सोते अपनी देशवासिनी प्रेयसीका नाम लेकर उड़िया भाषामें इतने ज़ोरसे बर्रा उठता है कि बेचाराम बाबूकी नींद टूट जाती है। इसी तरहके विचित्र उत्पातोंने बेचाराम बाबूको कातर कर दिया था। यह संग-हीन जीवन अब

उन्हें किसी तरह भला न लगता था। मनमें आया कि चलो एक बार स्टीमरसे सुन्दरबनमें अपनी ज़मींदारीपर हो आयें ; मुमकिन है, वहाँ अपनी रिआयाके बीचमें थोड़ी-बहुत शान्ति मिले। सोचते-सोचते इस संकल्पको बहुत-कुछ पक्का कर लिया था कि इतनेमें किसीने कहा—"क्या बेचाराम बाबू हैं ! नमस्कार !"

बेचाराम बाबूने मुँह फेरकर देखा, तो तालतल्लेके विपिन चौधरी हैं। वे पहले सियालदह स्टेशनपर टिकट कलेक्टर थे, बादमें पुराने रिटर्न टिकट बेचनेपर नौकरी छूट गई, अब उत्तरपाड़ेमें आकर भूसीकी आढ़त करते थे। उनसे पहलेकी जान-पहचान थी, बेचाराम बाबूने कहा—"हाँ।"

विपिनने कहा—"खूब ! बहुत दिनों बाद भेंट हुई। जान पड़ता है, आप अपने बागमें आये हैं ? घरवालोंके साथ ?"

बेचाराम बाबूने बहुत उदास मुँह बनाकर कहा—"घरवाले नहीं हैं।"

विपिनने कहा—"ऐं घरवाले नहीं ! इसका तो मुझे पता ही नहीं ! बड़े दुःखकी बात है !"

बेचारामने दार्शनिककी भाँति गम्भीर स्वरसे कहा—"दुःख काहेका ? संसारमें मिलन-विरह, दिन-रात, सभी तो है। सभी तो सहना पड़ता है !"

विपिनने ज़रा दम लेकर कहा—"तो, अगर आप कुछ खयाल न करें, मेरी सालीकी उम्र इक्कीस वर्ष है। रंग मेरी स्त्रीसे भी गोरा है, आँखें उतनी बड़ी-बड़ी तो नहीं हैं ; पर और बातोंमें, समझते हैं न—बहुत सुन्दरी है। ग़रीब ब्राह्मण हूँ। यदि आप आज्ञा दें, तो—"

गंगाकी ओर देख-देखकर तैरते समय मंजरीके शरीरकी चपलताकी स्मृति बेचाराम बाबूके हृदयमें हिलोरें मार रही थी। विपिनने जो-कुछ कहा,

वह उनके कानों तक पहुँचा ही नहीं, उन्होंने अनमने भावसे कहा—"देखूँगा।"

विपिनने घर लौटते ही पहले तो अपनी स्त्रीको, फिर अपनी सासको और फिर अपने ससुर माल-गोदामके क्लार्क श्याममनोहरको बताया कि उसने एक बड़ा शिकार फाँसा है। साथ ही अपनी साली लीलाके गालमें चुटकी काटकर दो बोल हँसी करनेसे भी नहीं चूका। बेचाराम बाबूकी दुहाजू पत्नी होनेसे क्या होगा, उनके घर कैसा चैन है इत्यादि बातें बतला-बतलाकर विपिनने कन्या-भारसे पीड़ित श्याममनोहर बाबू और उनकी स्त्रीको लालचसे अधीर कर दिया। वृद्ध-वृद्धाको रात-भर नींद न आई। दूसरे दिन सूरज निकलनेके पहले ही श्याममनोहरकी स्त्रीने अपने पतिको बेचाराम बाबूका घर-द्वार देखने और उनके सम्बन्धमें और बातोंका पता लगानेके लिए सवेरेकी गाड़ीसे ही कलकत्ते रवाना किया।

× × × ×

कई दिन तक हरीके तारकी प्रतीक्षामें तार-पियनकी बाट जोहते-जोहते मंजरीकी आँखोंकी ज्योति फीकी पड़ गई थी। बेचाराम बाबूके मथुरा-प्रस्थानके दिनसे ही उसकी नींद ग़ायब हो रही थी, हरीका तार न मिलनेसे भूख भी ग़ायब हो गई।

मंजरी अब दिन-भर रोती रहती। उस दिन भी दोपहरको बैठी रो रही थी, इतनेमें बाहर दरवाज़ेपर किसीने आवाज़ दी—"यह क्या बेचाराम बाबूका मकान है?"

मंजरीने सोई हुई श्यामा महरीके बाल पकड़कर खींचते हुए कहा—"श्यामा, श्यामा, देख तो, जान पड़ता है, तार आया—"

श्यामा उठकर नीचे गई और लौटकर बोली—"तार-वार नहीं, एक कोई बूढ़े भलेमानस हैं।"

शायद पतिकी कुछ खबर मिले, यह सोचकर मंजरी श्यामाको साथ लेकर नीचे उतर आई। बूढ़े सज्जनको बैठकेमें बिठलाकर प्रश्न किया—"आप कहाँसे आते हैं?"

श्याममनोहर बाबूने उत्तर दिया—"उत्तरपाड़ेसे। यह बेचाराम बाबूका निजका मकान है? पुश्तैनी?"

मंजरीने कहा—"हूँ।"

"रास्ता भूलकर मैं कालीघाट जा पहुँचा था। घर तो अच्छा है।" कहकर श्याममनोहर बाबूने घुमा-फिराकर अनेकों पारिवारिक प्रश्न करके यह समझ लिया कि बेचाराम बाबूके हाथमें पड़नेसे उनकी लाड़ली बेटी सचमुच रानी बनकर रहेगी। जाते समय उन्होंने धीरेसे कहा—"अब तो हाथ पीले करना भर है।"

यह बात मंजरीके कानमें जा पड़ी। उसने कहा—"क्या कहा आपने?"

श्याममनोहरने कहा—"क्या बताऊँ मा, एक सयानी लड़की है, उसका भार उतारना है। मेरे दामाद विपिन बेचारामके मित्र हैं, उन्होंने बताया कि बेचाराम दूसरा विवाह करना चाहते हैं।"

श्यामा महरीने आश्चर्यके मारे मुँह बा दिया। मंजरीकी ज्योतिहीन आँखोंमें पुनः ज्योति लौट आई। उसने पूछा—"वे कहाँ हैं?"

"उत्तरपाड़ेमें हैं,"—कहकर शुभकर्म समाप्त होनेपर उनकी बेटी राजरानी होगी, इस सम्भावनापर मनके लड्डू खाते हुए श्याममनोहर लाठी ठक-ठक करते चले गये।

बेचाराम बाबू मथुरा जानेका बहाना करके उत्तरपाड़ा जाकर छिपे-छिपे दूसरा विवाह करनेका षड्यन्त्र कर रहे हैं ! मंजरीके दिमाग़में बिजली-सी दौड़ने लगी। जान पड़ने लगा कि बेचाराम बाबू मूर्तिमान षड्यन्त्र हैं ! नाना प्रकारसे उसे मैट्रिकुलेशन परीक्षासे वंचित रखकर आज तक उन्होंने मंजरीके साथ जो-कुछ भी व्यवहार किया, सभीमें कुछ-न-कुछ छल-कपट और षड्यन्त्र था ! क्या करेगी, मंजरी कुछ भी निश्चय न कर सकी। श्यामा महरीने उसी समय कहा—"सोचकर और क्या करोगी ? अभी समय है। तुम्हें देखते ही—"

"मैं उन्हें नहीं चाहती। मेरे लड़के-लड़कियोंमें ही मेरा सब-कुछ है। महादेव, महादेव !"

हुक्म पाकर महादेव दरवान टैक्सी ले आया।

× × × ×

जाड़ोंकी शाम नज़दीक आ गई थी। बग़ीचेके बँगलेके बरामदेमें आरामकुर्सीपर एक चादर ओढ़े बेचाराम बाबू उतरे मुँहसे बैठे थे। सामने कुर्सीपर विपिन चौधुरी बैठे हुए कह रहे थे—"यह कैसी बात है साहब, मुफ़्तमें बूढ़े आदमीके चौदह आने रेल-भाड़ेमें खर्च कराकर अब आप कहते हैं—"

बेचाराम बाबूने कहा—"आपने ग़लत सुना। मैंने वह सब कहा ही नहीं।"

विपिनने कहा—"जनाब, ग़लत सुनूँगा मैं ? भूसीकी दलाली करके खाता हूँ—कौड़ी-गंडेका हिसाब-किताब तक याद रहता है, कभी ग़लती नहीं होती, और मैं ग़लत सुनूँगा ! साफ़-साफ़ कहिये, विवाह करेंगे या नहीं ?"

बेचाराम बाबूने सिर दबाते हुए कहा—"महाशय, परेशान न कीजिए! मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। मेरी स्त्री मौजूद है—अपने बापके घर है, इसीलिए मैंने कह दिया था कि घरवाले नहीं हैं। और यदि वह न रहती, तो भी मैं दूसरा ब्याह कभी न करता, यह जानते हैं? उसे छोड़कर अन्य किसी अपरिचितसे विवाह नहीं कर सकता—उसके साथ चौदह वर्षका परिचय है—समझते हैं?"

"स्त्रीमें अपरिचित क्या? एक बार देखनेसे ही नस-नाड़ी पहचानी जाती है! यह सब आपकी धोखेबाज़ी है! एक स्त्री मौजूद है, तो क्या हुआ? और एक विवाह करके यहाँ रख जाइये, महीने-महीने खाने-पीनेका खर्च भेजते रहियेगा।"

बेचाराम बाबूने बिगड़कर कहा—"आपसे कहता हूँ, मेरा सिर दर्द कर रहा है, मैं आपसे ज़्यादा बातचीत नहीं कर सकता—"

इतनी देरसे मंजरी दरवाज़ेकी आड़में खड़ी-खड़ी पतिकी बातें सुन-सुनकर पश्चात्तापके मारे जल रही थी। अब वह अपनेको न रोक सकी और एकाएक बाहर आकर विपिनके सामने खड़ी हो गई।

बेचाराम बाबूने "अरे तुम!" कहकर उठनेकी चेष्टा की; लेकिन फिर आरामकुर्सीपर लेटकर आँखें बन्द कर लीं! विपिन स्थिति समझकर तेज़ीसे चल दिया—चौदह आने वसूल न कर सका। श्यामा महरीसे खबर पाते ही चारों लड़के-लड़कियाँ परसी हुई थाली फेंक-फाँककर दौड़ पड़े और आकर रुआँसी माको घेरकर खड़े हो गये। मंजरी रोते-रोते सभोंको एक साथ छातीसे लिपटाकर आरामकुर्सीपर लेटे हुए बेचाराम बाबूके वर्णहीन ओठोंकी ओर बार-बार सतृष्ण दृष्टि डालने लगी।

दोनोंकी कई बार चार आँखें हुईं; किन्तु पहले कौन बात करे, यह स्थिर न हो सका। पूड़ी परोसनेके बहाने 'और दोठो दें ?' कहकर बातचीत आरम्भ करनेसे काम सिद्ध होगा और मानकी हानि भी न होगी, यह सोचकर मंजरीने रसोईघरमें प्रवेश किया। कुछ देर बाद पूड़ियोंकी थाली हाथमें लिये आई, तो देखा कि आरामकुर्सी खाली है, बेचाराम नदारद हैं! किसी नई आशंकासे मंजरीका हृदय धक-धक करने लगा।

× × × ×

गंगाके घाटपर बेचाराम बाबू निश्चिन्त होकर बैठे हैं। बस—अब कोई उत्पात नहीं—अब संसार खुशीसे रसातल जा सकता है। वे यह सोच ही रहे थे कि इतनेमें दबे पैरोंसे आकर कोई उनकी बगलमें चुपचाप बैठ गया। देखा, मंजरी। उनके शरीरमें बिजली-सी दौड़ गई, फिर भी वे मौन रहे। मंजरीके शरीरपर सेमीज़ या ब्लाउज न था। चुपचाप बैठे-बैठे पूसकी कड़ाकेकी सर्दीमें वह काँपने लगी। बेचाराम बाबूने कनखियोंसे अर्धांगिनीकी हालत देखकर अपने ओढ़े हुए अलवानको थोड़ा ऊपर उठाया और मंजरीका काँपता हुआ शरीर उसके भीतर दाखिल हो गया। उसके बाद उनके बाएँ कंधेपर मंजरीके मस्तकने और दाहने कंधेपर मंजरीके हाथने बिना बाधाके स्थान प्राप्त कर लिया।

गंगामें उस समय ज्वार आ गई थी। ज्वारके वेगमें नाव छोड़कर कई एक माँझी एक साथ सुर मिलाकर कोरसमें पूर्वीय बंगालका कोई भटियाली गीत गा रहे थे :—

रेला मारै रे पुरवैया, सन-सन बहै बयार,
नैयाके सब पाल फटे हैं, पड़ी बीच मँझधार।
ओरे माँझी, ओरे केवट, खबरदार, हुशियार!

प्रेम-नदीमें ज्वार चढ़ी है, मौजा मारै धार,
अभी समय है जीवन-नैया कर ले जो तू पार।
ओरे माँझी, ओरे केवट, खबरदार, हुशियार !

यह सुनकर किनारेपर बैठे हुए दो मौन प्राणी हँस दिये ! आवाज़ तो निकली ! एकने रुँधे हुए गद्‌गद् स्वरसे पुकारा—"मंजु !"

दूसरेने सिसकते-सिसकते कहा—"प्यारे !"

समाज-सुधारक

"आजसे

(क) दलित जनसाधारणकी सेवा करना हमारे जीवनका लक्ष्य होगा।

(ख) उनकी सामाजिक उन्नति करना हमारे जीवनका मूल-मंत्र होगा।

(ग) विधवाओंके दुःख दूर करना हमारे जीवनका व्रत होगा।

भगवान हमारी सहायता करें।"

दृढ़ स्वरसे यह कई वाक्य पढ़कर चिरंजीव अनादिचरण चक्रवर्ती बी० ए० ने अपने दस्तखत किये—वल्द स्वर्गीय श्यामाचरण चक्रवर्ती, साकिन राजपुर, ज़िला जैसोर।

नाकके चौड़े टीलेपर चश्मा खिसकाते हुए 'समाज-सुधारक समिति'के प्रवीण मन्त्री महाशयने कहा—"आज जो व्रत ग्रहण किया है, यदि इसका उद्यापन कर सको, तो जीवन सार्थक हो जाय। तुम कब जा रहे हो?"

"आज ही। और देरी नहीं करूँगा। जातिकी दुर्दशा देखकर अब धैर्य रखना मेरे लिए असम्भव हो गया है।"

"जाओ। तुम्हारा जीवन और सबके लिए आदर्श हो।"—कहकर मन्त्री महाशयने अन्य पाँच उपस्थित युवकोंकी ओर देखा। अनादि नमस्कार करके बाहर आया।

उन दिनों समाज-सुधारके लिए शहरमें ढेर-की-ढेर सभा-समितियाँ पैदा हो रही थीं। इसी प्रकारकी एक सभाके कार्यकर्ता और प्रचारकका पद चिरंजीव अनादिचरणने ग्रहण किया। एक दिन पहले कालेज स्क्वायरमें मन्त्री महाशयका ओजस्वी व्याख्यान सुनकर उसके मनमें जाति-सेवाके लिए जो शक्तिशाली आग्रह जाग्रत हो उठा था, वही आज इस पदग्रहणके रूपमें प्रकट हुआ!

मेसमें लौटकर अनादिने मित्रोंको पुकारकर कहा—"मैंने अपने जीवनके स्वप्नोंको सफल करनेका अवसर प्राप्त किया है। मैं कर्म-पथपर प्रस्थान करता हूँ, तुम सब पीछे-पीछे आओ।"

यह कहकर अनादिने आज शामकी सारी घटना मित्रोंको बतलाई। सबने एक ही वाक्यमें कहा—"हाँ, यह एक कामकी बात हुई, तुम जाओ।" दो-एक साथियोंने कानूनकी परीक्षा समाप्त होनेपर उसका साथ देनेका भरोसा भी दिया।

अनादिने रामचरन नौकरको बुलाकर चाय लानेका हुक्म दिया। रामचरन जब आधी सीढ़ियाँ उतर चुका, तो अनादिने पुकारकर कहा—"मोड़पर की दूकानसे चाय लाना, रामचरन!"

रामचरन बोला—"यह क्या बाबू, वह तो ननकू धोबीकी दुकान है!"

अनादिने दृढ़तापूर्वक कहा—"पृथिवीपर कोई धोबी-नाई नहीं है, सब बराबर हैं। एक ही थलपर, एक ही जलमें—"

रामचरनने पूरी बात नहीं सुनी, "अच्छा" कहकर नीचे उतर गया और धीरेसे बोला—"रातमें बाबूकी बदौलत नहाना पड़ेगा।"

जब चाय आई, तो ग्यारह मित्रोंमें केवल तीन ही कमरेमें मौजूद रह गये थे। बाक़ी सब चाय आनेके पहले ही किसी-न-किसी कामसे उठ गये थे। फलतः ननकू धोबीकी दूकानकी चाय चार प्यालोंको छोड़कर बाक़ी सब परनालेमें गई, भावाविष्ट अनादिने यह देखा।

[२]

ट्रेनसे उतरकर कोई तीन बजे अनादि हाथमें बैग दबाये चारखण्डी घाटपर आ पहुँचा। सारी रात नावपर काटनी पड़ेगी, इसलिए उसने एक बड़ी-सी नाव भाड़े की। नाव जब चारखण्डीके घाटपर आकर पहुँची, तब प्रायः शाम हो चुकी थी। नावके हीरा माँझीने अनादिको पुकारकर पूछा—"बाबूजी, रातमें फलाहार कीजिएगा, या आलूकी तरकारी और भात खाइयेगा?"

अनादिने बिछौनेपर लेटे हुए जवाब दिया—"भात ही खाऊँगा।"

"तो लाइये चार गण्डे पैसे, जाकर सौदा ले आऊँ।"

पैसे लेकर हीरा चला गया। हीराके चले जानेपर मन्नू माँझीको तम्बाकूकी याद आई। उसने अनादिको पुकारकर पूछा—"बाबूजी, तम्बाकू पीते हैं?"

अनादिने कहा—"सिगरेट पीता हूँ। मेरे पास है।"

मन्नूने चटसे हाथ बढ़ाकर कहा—"बाबूजी, एकठो छिगरेट प्रसादीमें मिलेगा?"

अनादिने एक सिगरेट फेंक दिया। सिगरेट जलाकर और एक कश

खींचकर, खाँसते-खाँसते मन्नूने पूछा—"रेतीपर आपके लिए चूल्हा बना दूँ, बाबू ?"

अनादिने कहा—"रेतीपर क्यों ? क्या तुम्हारा चूल्हा नहीं है ?"

मन्नू बोला—"जी, है तो ; लेकिन हम लोग तो माँझी हैं।"

जात-पाँतके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करनेके इस प्रथम अवसरको अनादि न त्याग सका, कहने लगा—"माँझी ! माँझी होनेसे क्या बुराई है ? जातिसे कोई छोटा नहीं होता, भाई ! तुम लोग खुद अपनेको छोटा समझते हो, इसीसे तुम लोग छोटे हो। तुम लोगोंकी इस भूलको दूर करनेके लिए ही मैं आया हूँ। मैं खुद ब्राह्मण हूँ, तुम लोगोंकी हाँडीमें खाकर दिखला दूँगा कि माँझीके हाथका खानेसे ब्राह्मणकी जाति नहीं जाती।"

मन्नूकी आँखें चढ़ गईं। वह और कुछ न कह सका। अनादिने, यह समझकर कि उसकी बातने मन्नूको प्रभावित कर दिया है, मौन रहकर उसे सोचनेका अवसर दिया।

थोड़ी ही देरमें हीरा आ पहुँचा। आते ही मन्नूसे बोला—"मिट्टीका कूँडा तो दे।"

मन्नूने कहा—"काहे ?"

हीरा बोला—"कौन फिर रातके वक्त झँझट करेगा ? दे कूँडा दे। चिउड़ा खरीद लाया हूँ, सवा सेर। पानी डालकर रख दूँ।"

मन्नूने झाँककर देखा, अनादि आँखें बन्द किये लेटा है, तब उसने हीरासे धीरेसे कहा—"नाव मत छूना, कूँडा देता हूँ। अलगसे लेकर रेतीपर रख दे।"

हीराने आश्चर्यसे कहा—"काहे रे?"

मन्नूने हीराकी ओर गर्दन बढ़ाकर धीरेसे कहा—"बाबू क्रिस्तान है!"

हीराने आँखें फाड़कर कहा—"कैसे जाना? गलेमें तो जनेऊ पड़ा है।"

"वह लोगोंको दिखानेके लिए है। बाबू हम लोगोंके चूल्हेका पका भात खाना चाहता है!"

यह सुनकर अनादिके क्रिस्तान होनेमें हीराको कोई सन्देह बाक़ी न रहा। उसने कहा—"ला, कूँडा दूरसे मेरे हाथपर डाल दे।"

मन्नूने कूँडा देकर अनादिको पुकारा। अनादिको तन्द्रा-सी आती जान पड़ती थी, आवाज़ सुनकर उठ बैठा और पूछा—"चूल्हा सुलग गया?"

हीरा बड़ी मुश्किलमें पड़ गया। क्रिस्तानके छू लेनेसे चूल्हेकी जाति चली जायगी, इधर ब्राह्मणकी तरह व्यवहार करनेसे भी पाप होगा! हीराने ज़रा सोचकर कहा—"बाबूजी, आज हमारा चूल्हा नहीं जलेगा, रातमें खानेके लिए हम लोग चिउड़ा ले आये हैं।"

अपने हाथसे बनाकर खानेका अभ्यास तो अनादिको किसी भी जन्ममें नहीं था, अतः चिउड़ेकी बात सुनकर बोला—"अच्छा, तो मैं भी चिउड़ा खा लूँगा। रातमें बनाने-बनूनेका झगड़ा करनेकी ज़रूरत नहीं।"

इस प्रकार चूल्हेकी जाति बचाकर हीरा बाबूके लिए चिउड़ा लेने चला गया।

[३]

दूसरे दिन सवेरे, पहर-भर दिन चढ़े नाव राजपुरके घाटपर लगी। अनादिने बहुत छुटपनमें गाँव छोड़ा था, उसके बाद शहरमें रहते-रहते बीस वर्ष हो चुके थे। फलतः गाँवमें कोई भी उसका परिचित न था। मुंगेरमें उसके पिता श्यामाचरण बाबूके घर जो लोग जब-तब जाकर आब-हवा बदलनेके लिए तीन-तीन, चार-चार महीने तक मेहमानी किया करते थे, अनादिको उनके नाम तक मालूम नहीं थे।

बहुत सोच-विचारकर पूछते-पूछते वह अपने मकानके सामने जा मौजूद हुआ। राह चलनेवाले दो-एक आदमी कौतूहल-भरी दृष्टिसे उसे देखने लगे। कुछ कानाफूँसी भी करने लगे; लेकिन किसीने उससे कुछ पूछा नहीं। उसने अपने सारे शरीरपर मोटा कम्बल लपेट रखा था, और गाँववाले इसी वेशसे डरते थे, क्योंकि कुछ दिन पहले ही प्रेसिडेन्ट पंचायतने इश्तहार जारी करके सबको जनाया था कि गांधीके चेलोंके साथ किसी तरहकी बातचीत करने या उनसे सम्बन्ध रखनेकी सरकार बहादुरने मनाही कर दी है। गांधीके चेलोंकी पहचानके बारेमें इस तरह लिखा था :—

(क) वे लोग सिरपर सफ़ेद खद्दरकी टोपी लगायेंगे।

(ख) वे मोटा कपड़ा पहनेंगे; शरीरपर मोटे कपड़ेका कुर्ता या कम्बल होगा।

(ग) हिन्दू होनेसे वे 'बन्देमातरम्' और मुसलमान होनेसे 'अल्लाहो अकबर' की आवाज़ लगायेंगे।

(घ) वे सभा करके व्याख्यान देंगे और सबसे चार-चार आने पैसे वसूलेंगे।

सब लक्षण न मिलनेपर भी गांधीके चेलोंका एक लक्षण तो अनादिके सारे शरीरपर लपटा हुआ था ही। इसके अलावा इससे पहले गांधीके जो चेले गाँवमें भिक्षा माँगनेके लिए आये थे, उनके चलने-फिरनेका ढंग भी ऐसा ही था।

जो भी हो, किसी तरह पूछते-पूछते अनादि अपने घर तक पहुँच ही गया। घरका सहन जंगल हो रहा था। चौकोर घरकी दो तरफ़की दीवारें गिर गई थीं। टूटी हुई दीवारोंकी ईंटें किसी पड़ोसीकी सीढ़ियाँ बनवानेके और किसीके तालाबका घाट बँधवानेके काममें आ चुकी थीं। रसोईघरके एक तरफ़के छप्परमें सैकड़ों छेदोंवाली टीन अब तक वर्तमान थी, दूसरी तरफ़के छप्परकी टीनको नष्ट होते देखकर अनादिके एक सजातीयने अपनी गोशालाके काममें लगा लिया था। बाग़के जंगलेमें लगे हुए शालके दो-एक खम्भे टूटी-फूटी हालतमें अब तक दीख पड़ते थे; लेकिन बढ़िया नक़्क़ाशीदार खम्भे ग्वालोंके गाय चराने अथवा बरसातमें पड़ोसियोंके ईंधनके काममें आकर बहुत पहले ही समाप्त हो चुके थे। कुछ दिन रहकर मकानकी मरम्मत करा डालनेका संकल्प करते हुए अनादिने घरका मोर्चा लगा हुआ ताला खोला और दाहने हाथके कमरेमें प्रवेश किया। उसके बाद किसी तरह कमरेसे एक तख्त निकालकर बाहर बिछाया और उसपर बैठकर आधा घंटा आराम किया। फिर उठकर वह पीछेके दरवाज़ेके सामनेवाले तालाबके घाटपर हाथ-मुँह धोने बैठा।

उसी समय अचानक एक आदमीने आकर पीछेसे पूछा—"महाशय, आपका आना कहाँसे हुआ ?"

अनादिने मुँह फिराकर पूछनेवालेको देखा और कहा—"कलकत्तेसे।"

"आपका नाम ?"

"मेरा नाम श्री अनादिचरण चक्रवर्ती है, पिताका नाम स्वर्गीय श्यामाचरण चक्रवर्ती।"

प्रश्नकर्ताने दाँतोंमें दबी हुई दातूनको फेंककर कहा—"अरे ! तुम हमारे श्यामाचरण भैयाके लड़के हो ? घर लौटकर आये हो ? अच्छा ! यह अच्छा किया !"

यह सज्जन कौन थे, अनादि पहचानता न था। शायद कोई आत्मीय होंगे, यह समझकर उसने अदबसे कहा—"जी हाँ, अब यहाँ कुछ दिन रहूँगा !"

"अच्छा है, हम लोग तो हैं ही। कोई चिन्ता नहीं; लेकिन अब न तो वह राम हैं और न वह अयोध्या। जो गाँवके सिरताज थे, वे सब एक-एक करके चल बसे। अब मैं रह गया हूँ, या हैं नादू चाचा ! सो हम लोगोंकी भी चलाचलीकी उम्र हो गई है। तुम मुझे पहचान नहीं पाये ? मैं हूँ रसिकलाल घोषाल। एक बार मुंगेर जाकर मैं तुम्हारे घर कई महीने रहा था; तब तुम बहुत छोटे थे।" यह कहकर रसिक घोषालने अनादिके पिताकी अतिथि-सेवाकी बहुत-सी बातें कहीं।

अनादि जब नहाकर उठा, तो रसिकने कहा—"अच्छा बेटा, शामको तुम घरपर ही रहना, मैं आऊँगा। गाँवका सब हाल-चाल बताऊँगा। यहाँ रहना है, तो बहुत सम्हलकर चलना पड़ेगा।"

"अच्छा," कहकर अनादि कमरेमें लौट आया।

[४]

दोपहरके भोजनके बाद अनादिने कई मज़दूर लगाकर घरका आँगन साफ करा डाला। मज़दूरोंसे यह भी पता लगा लिया कि गाँवमें नीच जातिवालोंके कितने घर हैं, विधवाओंकी संख्या कितनी है, इत्यादि। यह जानकारी प्राप्त करनेके बाद ही तो कार्य आरम्भ करनेकी बारी आयेगी। कार्य किस तरह शुरू करके बढ़ाया जाय, यह सोच ही रहा था कि इतनेमें घोषाल महाशयने आकर कहा—"वाह भैया, देखता हूँ कि तुमने तो एक ही दिनमें खूब ठीक-ठाक करा लिया।"

अनादिने उन्हें बैठनेकी जगह देते हुए कहा—"जी हाँ, यहाँ कुछ दिन रहना भी तो है।"

"सो तो रहोगे ही। कुछ दिन न ठहरनेसे सब ठीक-ठाक न कर सकोगे। यही देखो न क्या हुआ है। यह जो आमका पेड़ है—वह था तुम्हारी हदमें, अब उसपर कब्ज़ा करके खा रहा है नन्दू चक्रवर्ती। कुछ नहीं, बस हक़का एक मुक़दमा चला देनेसे ही बेटाकी तबियत झक हो जायगी, बाप-बाप कहकर अपना जंगला हटा लेंगे।

अनादिने कुछ जवाब न दिया।

रसिक घोषालने कहा—"इसके बाद तालाबके उस किनारे जो बाँसका झाड़ है, उसके तो सभी मालिक हैं। गाँवमें जिस किसीको बाँसकी ज़रूरत होती है, वही सीधा उसी झाड़पर पहुँचता है। उधर भी थोड़ी नज़र रखनी पड़ेगी।"

अनादिने कहा—"जी, अच्छा।"

रसिक घोषाल बोले—"मुक़दमा दायर करनेमें कोई दिक़त नहीं। मेरा भंजदामाद सोमनाथ एक बड़े वकीलका मुहर्रिर है, दो रुपये फेंकनेसे ही वह सब ठीक कर देगा और तुमसे वकालतनामेपर दस्तख़त करा ले जायगा। दौड़-धूप और पैरवी मैं ही करूँगा।"

अनादिने कहा—"अच्छा।"

इसके बाद भी रसिक घोषालको बहुत-कुछ कहना था; लेकिन गाँवके और कई भलेमानस आ गये। श्यामाचरण चक्रवर्ती बहुत धन छोड़ गये थे; उनका अविवाहित पुत्र चिरंजीव अनादिचरण तीन-तीन इम्तिहान पास करके गाँवको लौटा है, उसका अभिभावक कोई नहीं है, इसलिए सभीको यह पद ग्रहण करनेका आग्रह था। सिर्फ दो-एक नवयुवक किसी अन्य उद्देशसे आये थे। उन्होंने गाँवमें 'राजपुर नेशनल ब्रिटिश ड्रामेटिक क्लब' नामक एक नाट्य-समिति खोली थी। उसके लिए साज-सरंजामकी कमी थी, जिसके लिए कुछ चन्दा इकट्ठा करना इन युवकोंका उद्देश था। अनादिने सबको अभिवादन करके यथायोग्य आसन दिया और कहा—"आप सबसे भेंट करके बड़ी खुशी हुई; लेकिन गाँव छोड़े बहुत दिन हो गये, इसलिए आप लोगोंसे परिचित नहीं हूँ।"

इसपर सब अपना-अपना परिचय दे गये। श्यामाचरणके साथ हरएककी बड़ी गहरी मित्रता थी, यह भी अनादिको मालूम हुआ। थोड़ी ही देरमें अनादिको मालूम हो गया कि गाँव नाते-रिश्तेदारोंसे भी खाली नहीं है। आये हुए प्रत्येक व्यक्तिका उससे सम्बन्ध है। कोई मामा है, कोई दादा है, कोई चाचा है, कोई ताऊ है, कोई मौसा है।

इतने रिश्तेदारोंका पता पाकर अनादि बहुत खुश हुआ। प्रथम परिचय हो जानेपर एक व्यक्तिने पूछा—"भैया, गांधीके चेले तो नहीं हो ?"

प्रश्नका ढंग, प्रश्नकर्ताकी दृष्टि और सारी उपस्थित मंडलीका कौतूहल-भरा रुख देखकर सहसा अनादिके मनमें जान पड़ा कि इस वक्त सच्ची बात कहना बुद्धिमानीका काम न होगा, क्योंकि थोड़े ही दिन पहले किसी कांग्रेसी कार्यकर्तापर देहातमें जो मुसीबत बीती थी, उसका हाल उसने अखबारोंमें पढ़ा था। इस समय उसे वही बात याद आ गई, बोला—"जी नहीं, हमारा काम दूसरे ढंगका है। मैं एक बड़ा उद्देश लेकर आया हूँ।"

वह बड़ा उद्देश क्या है, यह जाननेका कौतूहल सभीके मनमें उत्पन्न हो गया।

एक वृद्धने पूछा—"वह क्या है, बेटा ?"

अनादिने कहा—"पतित जातियोंका उद्धार। देखिये न इसी गाँवमें जो कोरी, चमार, मछुए, बढ़ई रहते हैं, उनकी क्या हालत है ? इन सबका उद्धार करना ही हमारा उद्देश है। इनका छुआ पानी ब्राह्मणोंको व्यवहार कराके यह दिखा देना होगा कि ये सब भी मनुष्य हैं।"

पिछली बातपर सभी उपस्थित व्यक्ति चंचल हो उठे। इससे पहले उन लोगोंने किसी अखबारमें पढ़ा था कि कुछ भ्रष्ट हिन्दू युवकोंका एक दल वर्णाश्रम धर्मका विध्वंस करनेके लिए व्याख्यान देता और प्रचार करता घूमता है, सो यह बात झूठ नहीं थी ; लेकिन उस समय उसके सामने किसीने कोई मत प्रकट नहीं किया।

इसके बाद भी अनादि अनेक बातें कह गया। संध्या हो जानेसे एक-एक करके सभी सज्जन चले गये, रह गये केवल थियेटर मंडलीके पंडे नवयुवक।

वे सब अनादिकी पूरी सहायता करेंगे, यह भरोसा देकर उन लोगोंने उससे एक टेबिल हारमोनियम दान करनेका वादा करा लिया।

दूसरे दिनसे अनादिकी समाज-सुधारकी चेष्टा आरम्भ हुई। सवेरे धीवरोंके मुहल्लेके मातबर आदमियोंको बुलाकर उसने उन सबको अपना उद्देश समझा दिया। तीन-तीन इम्तिहान पास करनेवाले इस दिग्गज विद्वानकी सारी बातोंको उन्होंने मान लिया। उसके बाद बढ़इयोंके मुहल्लेमें और सबके अन्तमें चमारोंके मुहल्लेमें प्रचार-कार्य समाप्त करके अनादिने सब प्रकारके अवनत हिन्दुओंकी एक विराट सभा बुलाई।

धीवरों और बढ़इयोंके मुहल्लेमें दो-एक युवक थे। स्कूलमें आठवें दर्जे तक पढ़कर माता सरस्वतीसे विदा लेकर आजकल वे लोग घरपर बेकार बैठे थे। अपनी जातिका पेशा करना उनके लिए कठिन और लज्जाजनक था, इसीलिए उनमें समाजकी उन्नति करनेके जोशकी इन्तिहा न थी। वे सब नियमपूर्वक अपनी-अपनी जातिके जातीय पत्र पढ़ते थे, और उनकी जातिके प्रति ऊँची जातिवालोंका व्यवहार कितना अन्यायपूर्ण और विद्वेषपूर्ण है, यह बात अपनी जातिकी पंचायतोंकी बैठकोंमें समय-असमय प्रकट किया करते थे। लेकिन इस उपायसे अपनी जातिकी जनताको वे अब तक जगा नहीं सके थे। अनादिका उद्देश्य जानकर वे सब उसके भक्त हो गये। सभामें विभिन्न गावोंसे अपनी-अपनी जातिके प्रतिनिधियोंको बुलानेका ज़िम्मा उन्होंने लिया।

सभामें कई दिनकी देरी थी। इस बीचमें अनादिने एक और काम करनेकी इच्छासे अपने थियेटर-पार्टीके साथियोंको बुला भेजा। उनके आनेपर सबकी सलाहसे तै हुआ कि अगले रविवारको 'कीचक-संहार' नामक

पाँच अंकोंका नाटक खेला जाय। धार्मिक नाटककी बात सुनकर बहुतसी विधवाएँ उसे देखने आयेंगी, और इस मौक़ेका उपयोग करके, नाटक आरम्भ होनेके पहले, अनादि विधवाओंके उद्धारके लिए व्याख्यान देगा।

यह संकल्प स्थिर होनेके साथ ही साथ 'कीचक-संहार' नाटकका रिहर्सल शुरू हो गया। इस नाटककी सारी तैयारी तो थियेटर-पार्टी पहले ही कर चुकी थी, केवल जिस शय्यापर बैठकर कीचक द्रौपदीसे प्रेम-सम्भाषण करेगा, उस शय्याका प्रबन्ध नहीं हो रहा था। अनादिके घरमें बहुतसे गद्दे, तकिये और ग़लीचे थे, उन्हें देखकर ही कार्यकर्ताओंके मनमें बहुत दिनोंसे लगी हुई नाटक खेलनेकी लालसा जग उठी थी।

कई दिन मेहनत करके अनादिने मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टोंका सार निकाला, सामयिक पत्रोंसे विधवाओं तथा लड़कियोंके न मिलनेसे अविवाहितोंकी संख्याके आँकड़े इकट्ठे किये तथा शरीर और दिमाग़पर निरामिष भोजनके प्रभावके बारेमें विदेशी डाक्टरों और समाजतत्त्वज्ञोंके मत संग्रह किये और इन सब तथ्योंकी सहायतासे उसने एक लम्बी-चौड़ी वक्तृता तैयार की।

[५]

शाम को थियेटर शुरू होनेकी बात थी; लेकिन तब तक हाट नहीं उठी थी, इसीलिए दर्शकोंके आनेमें विलम्ब हुआ। रातमें ग्यारह बजे महिलाओंका निर्दिष्ट स्थान भर गया। पुरुष पहलेसे ही आ गये थे।

रंगमंचके पर्देकी आड़में, रागिनीका साथ देनेके लिए, बेहला पिड़िंग-पिड़िंग करके गला साध रहा था। इतनेमें तालियोंकी ध्वनिसे दर्शकगण

चकित हो उठे। अनादि आकर मंचपर खड़ा हुआ। वक्तृता पढ़ते समय श्रोताओंमें धीरे-धीरे जो समालोचना हो रही थी, अनादिने उसपर कान नहीं दिया। हाँ, बीच-बीचमें दो-चार आवारा लड़के जो 'आर्डर-आर्डर' चिल्ला उठते थे, केवल वही उसके कानों तक पहुँचा था। जब घंटा-भर बाद वक्तृता समाप्त हुई, तब उसने देखा कि थियेटरके साजघरमें बड़ा गोलमाल शुरू हो गया है। थियेटर-पार्टीके युवकोंके सामने खड़े हुए एक भलेमानस कह रहे थे—"जितने हैं, सब बदमाश, आवारा हैं! भलेघरकी औरतोंको बुलाकर इस तरह अपमान करना!"

बदलेमें युवकोंने और भी उजड्ड भाषामें कुछ जवाब दिया। धीरे-धीरे और भी दो-चार श्रोता आसन छोड़-छोड़कर आ गये। दोनों ओरसे ग़ैर-चालू भाषामें उत्तर-प्रत्युत्तर चलने लगे। उसी समय व्याख्यानका काग़ज़ बग़लमें दबाये अनादि आ खड़ा हुआ। उसे देखते ही चारों ओरसे जिस ढंगके वाक्यवाण बरसाने शुरू हुए, उससे किसी भी व्यक्तिका धीरज छूट सकता था; लेकिन अनादि अविचल रहा, पर उसे विस्मय ज़रूर हुआ। उसके अपूर्व व्याख्यानका ऐसा फल होगा, इसे वह सोच ही न सका था। धीरे-धीरे इकतरफा गाली-गलौज खतम हो गई; लेकिन अनादिको उत्तर देने योग्य कोई बात ही न सूझ पड़ी।

उसी समय एक अत्यन्त काले बालकने आकर अनादिका हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा—"तुम्हें बुलाती हैं—"

कौन बुलाता है, यह पूछे बिना ही अनादि बाहर निकल आया। साजघरके पीछे एक बड़े इमलीके दरख्तने दूर तक छाया फैला रखी थी, उसके नीचे खड़ी हुई जो स्त्री-मूर्ति अनादिकी प्रतीक्षा कर रही थी, उसने

उसे साष्टांग प्रणाम किया और बोली—"पालागन महाराज! हमारा कुछ उद्धार कर दीजिए।"

क्या उद्धार करना होगा, यह समझे बिना ही अनादिने कहा—"मुझसे जो कुछ हो सकेगा, ज़रूर करूँगा।"

स्त्रीने कहा—"महाराज, आपसे अच्छी तरह हो सकेगा। मेरी अभागी लड़कीको तारना होगा। आठ वर्षकी उम्रमें विधवा हुई थी, अब उन्नीसवींमें पड़ी है, महाराज! मैं अब और खिला नहीं सकती, जो कोई ले ले तो—"

अनादि सब कुछ समझ गया। उसका व्याख्यान एकदम निष्फल नहीं गया, यह देखकर उसे खुशी भी हुई। बोला—"वह हो जायगा। कल फुरसतमें मेरे घर आना, सब ठीक कर दूँगा। लेकिन यह काम क्या यहाँ हो सकेगा? कोई जाना-बूझा अच्छा लड़का है, जो विधवा-विवाह करना चाहता हो?"

स्त्रीने कहा—"यहाँ कौन विवाह करेगा, महाराज? भट्टाचार्य महाराज कहते हैं कि विधवा-विवाह करते हैं मुसलमान या क्रिस्तान। हिन्दुओंमें विधवा-विवाह बड़ा भारी पाप है।"

अनादिने व्यंगभरी हँसी हँसकर कहा—"तुम जाओ, मैं देखूँगा।"

स्त्री प्रणाम करके चली गई।

अनादि घर लौटा। इस बीचमें समाज-रक्षकोंका गुस्सा जाकर उतरा अभिनेताओंके ऊपर। जो लड़का उत्तरा बननेवाला था, बख्शीजी उसे कान पकड़कर घसीट ले गये; अभिमन्युका पार्ट करनेवाला इसके पहले ही अपने मामाकी लाल-पीली आँखें देखकर भाग खड़ा हुआ था। इसीलिए नाटक रातमें दो बजे आरम्भ होकर तीन बजे भंग हो गया।

[६]

दूसरे दिन शामके अन्धकारमें अनादिचरणकी समाज-सुधार-चेष्टाके प्रथम फल ललिताको साथ लिये वही रातवाली स्त्री आ मौजूद हुई। बातों-बातोंमें अनादिने उनकी समूची स्थिति समझ ली। ललिताने छोटी उम्रमें ही विधवा होकर इतने दिन तो काट लिये थे, अब उसकी माकी इच्छा उसे फिरसे संसारी बनानेकी है। अनादिने सब कुछ सुनकर कहा—"मैं जिस दिन यहाँसे लौटकर जाऊँगा, तुम उस दिन अपनी लड़कीको साथ लेकर मेरे संग चलना। अभी चुपचाप रहो, गाँव बहुत खराब है, बात फैल जानेसे कुछ भी न कर सकूँगा।"

मा-बेटी चली गईं।

इस बीचमें अनादिके चर विराट जातीय सभाके लिए श्रोता एकत्रित करते फिरते थे। इस बार अनादि संहिता-सागरको मथकर श्लोक निकालनेमें व्यस्त था। उन्नीस संहिताकारोंके साथ परिचय समाप्त होनेके पहले ही, अचानक एक दिन सवेरे अदालतके एक चपरासीने आकर अनादिके हाथमें एक सम्मन रख दिया। आनादिने देखा, गवाहीका सम्मन था। एकाएक वह किस मामलेमें गवाह बन गया, यह उसकी समझमें न आया। सम्मन हाथमें लिये वह घोषाल महाशयके यहाँ पहुँचा। घोषाल महाशयने शुरूसे आखिर तक सम्मन पढ़कर कहा—"इसमें कौन-सी मुश्किल है? कह देना कि वह पोद्दारकी हदके भीतर नहीं है।"

"वह क्या?"—अनादिने पूछा।

घोषाल महाशयने समझाया कि दीनू पोद्दार एक कटहलके पेड़से कटहल

तोड़ने गया था, जिसपर बख्शी वंशके बड़े बाबूने एतराज़ किया। इसीपर मामला चला। बख्शीजीने उसे गवाह बनाया है।

अनादिने बहुत बिगड़कर कहा—"मैं इन सब बातोंको क्या जानूँ? मुफ़्तमें मुझे हैरान करते हैं। मैं तो इन सबका भला करनेके लिए आया हूँ; पर देखता हूँ कि ये लोग—"

घोषाल बोले—"हैरानी काहेकी? सदर यहाँसे छै कोससे ज़्यादा दूर थोड़े ही है। और शुरू-शुरूमें तुम्हारी भलाईकी बातें सुनेगा कौन? पहले दो-चार गवाहियाँ दो, दो-चार मुक़दमें लड़ो, तभी तो लोग समझेंगे कि तुम गाँवके ही आदमी हो, तभी वे तुम्हारी बात सुनेंगे।"

अनादि जवाब दिये बिना ही लौट आया। थियेटरके बन्धुओंने सम्मन देखकर असली बात बतलाई। अनादिको गवाहीमें तलब करके हैरान करनेकी सलाह उस दिन दक्षिणपुराके मन्दिरमें हो रही थी। यह बात उनमें से एकने अपने कानों सुनी थी। यह सुनकर अनादि क्रोधसे जल उठा; बोला—"अच्छा, पहले मछुओं और बढ़इयोंका एक गुट्ट बना दूँ, उसके बाद इन लोगोंको समझूँगा।"

बड़े उत्साहके साथ अनादि अपने निश्चित काममें जुट गया। ऊँची जातिवालोंको छोड़कर और सब श्रेणियोंके लोग उसके अनुगत बन गये। सभाका स्थान प्रायः साफ़ हो चुका था। कल सभा होगी। विभिन्न गाँवोंसे नावोंपर और पैदल लोगोंने आना शुरू किया। अपने चरोंकी कार्य-तत्परता देखकर अनादिको आश्चर्य होता था। उसे इतनी आशा न थी। चरोंके अगुआ एक बढ़ई युवकको बुलाकर उसने कहा—"तुम बड़े कामके आदमी हो। तुम प्रचार-कार्य चलाते रहना, मैं कलकत्तेसे हर महीने तुम्हें खर्च भेजता रहूँगा।"

उसने एक गाल हँसकर कहा—"इन सब लोगोंको किस तरह यहाँ लाया हूँ, उसे तो बाबा विश्वकर्मा ही जानते हैं! क्या कोई आना चाहता था? कहते थे, उससे होगा क्या? उसके बाद जैसे ही मैंने कहा कि कलकत्तेसे एक पंडित आये हैं, जो भागवतकी कथा कहेंगे, वैसे ही सब-के-सब राज़ी हो गये! अब आपसे जो हो सके, कर लीजिए।"

सामाजिक उन्नतिके लिए कोई भी नहीं आना चाहता था; पर भागवतकी कथा सुननेके लिए सभी बिना आपत्तिके आ गये, यह सुनकर अनादिको आश्चर्य हुआ। सामाजिक उन्नतिकी कितनी अधिक आवश्यकता है, यह इन सब अज्ञानी, मूर्ख और असहायोंको इस बार अच्छी तरह समझाना होगा—यह बात उसने अपने मनमें स्थिर कर ली।

दूसरे दिन अवनत जातियोंकी विराट सभा जुड़ी। गाँवकी ऊँची जातियोंके सभी लोग कौतूहलवश सभा देखने आये थे। अनादि पोशाक बदलनेके लिए घर गया था। उसी समय गाँवके पंडित माधव भट्टाचार्य सभामें आये। उन्हें देखते ही मछुओंका चौधरी मोती सिटपिटाकर खड़ा हो गया और उसने बड़े विनयसे प्रणाम किया। पंडित महाराजने विद्रूपकी हँसी हँसकर कहा—"क्यों रे, चौधरी-बच्चे! ब्राह्मण बनने आया है?"

मोतीने दाँतसे जीभ काटते हुए कहा—"एँ महराज, आप कैसी बातें करते हैं?"

पंडितजी बोले—"तो फिर इन सब ब्राह्मसमाजियोंमें क्यों शामिल हुआ?"

ब्राह्मसमाजियोंकी बात सुनकर मोतीका मुँह सूख गया। बोला—"महराज, मेरा क़सूर नहीं है, यह इन पाजी छोकरोंका काम है।"

यह कहकर अपने किये हुए अपराधके लिए क्षमा माँगकर मोती आ बैठा। आध घंटा बाद अनादि आया। उसके सिरपर गेरुआ रंगका रेशमी साफ़ा, बदनपर लम्बा गेरुआ चोला और छातीपर लाल रंगके कपड़ेका एक फूल था, जिसपर सफ़ेद सूतसे लिखा था—"यतो धर्मस्ततो जयः।" उसे देखते ही उसके भक्त चरोंने ज़ोरकी जयध्वनिके साथ कहा—"बन्दे मातरम्।" श्रोताओंको यह शब्द कहनेका अभ्यास नहीं था, इसलिए भीड़ खामोश रही। इसपर उस उत्साही बढ़ई युवकने ज़ोरसे कहा—"एक बार सब भाई बोलो—" उसकी बात पूरी भी न हो पाई कि उपस्थित भीड़ने एक सुरसे आवाज़ लगाई—"राजा रामचन्द्रकी जय!"

तब अनादिने कोई तीन दस्ता कागज़ निकालकर श्रोताओंको समझाना शुरू किया। जोशके बहावमें वह न-जाने कितना क्या-क्या कह गया। अवनत जातियोंकी उन्नति करना ज़रूरी है, ब्राह्मणोंकी बदौलत ही जातिकी यह दुर्दशा है, शास्त्रकारोंने अन्याय किया है, इत्यादि। जो लोग भागवत सुनने आये थे, उनका धैर्य टूट गया। दो-चार उठकर चले गये। बाक़ी सब आपसमें बातचीत करने लगे।

कोई दो घंटे बाद व्याख्यान समाप्त करके अनादि कुर्सीपर बैठ गया और बोला—"मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका। अब उन्नति करना तुम लोगोंके हाथ है। उन्नति होनेपर बड़े-छोटेका भेद नहीं चल सकता, खाने-पीनेमें छुआछूत उठा देनी पड़ेगी। इस बाधाको तो दूर ही करना होगा।"

सभाके बीचसे एक आदमीने खड़े होकर कहा—"पहले बाबू लोग और ब्राह्मण-ठाकुर खायँ, तो हम लोग भी खायेंगे।"

इसपर अनादिने कुर्सीपर खड़े होकर कहा—"सब भाइयो सुनो ! मैं ब्राह्मण हूँ, मैं जो कुछ करूँगा, तुम लोग भी वही करोगे ?"

अनादिके अनुचरोंने एक स्वरसे कहा—"हाँ।"

प्रबन्ध पहले ही कर रखा गया था। अनादिने कहा—"लोचन, पानी लाओ।"

लोचन नामक एक कोरीके बालकने उठकर पानी-भरा लोटा अनादिके हाथमें दे दिया। अनादिने एक ही साँसमें पानी खतम करके कहा—"जिसने मुझे पानी दिया है, वह ज़ातका कोरी है। मैंने रास्ता दिखला दिया, अब तुम लोग आओ।"

पल-भरमें ही सभामें हुल्लड़ मच गया। पीछेसे भट्टाचार्य महाशय चिल्ला उठे—"म्लेच्छ, क्रिस्तान !" सभामें से अनेक कंठ एक स्वरसे पुकार उठे—"धोखा देकर ज़ात लेना चाहता है, म्लेच्छ, क्रिस्तान कहींका !"

अनादिने उन्हें समझानेकी चेष्टा की; लेकिन सब व्यर्थ हुई, अन्तमें वह बाहर निकल आया। उस समय उसके दिमाग़में आगकी चिनगारियाँ उठ रही थीं। संकल्प भंग हो जानेसे हताश होकर वह घर लौट आया।

इसके बाद सभामें क्या हुआ, यह जाननेकी इच्छा न रही; लेकिन शामको वह कोरी बालक लोचन ख़ूनसे लथपथ, आँखोंमें आँसू भरे, उसके सामने आ खड़ा हुआ और अनादिको पानी देनेके अपराधमें खड़ाऊँ, जूते और छड़ियोंसे जो-जो सज़ाएँ उसने पाई थीं, उन्हें दिखला-दिखलाकर रोने लगा। अनादिने पाँच रुपये देकर उसे विदा किया और अपना पोथी-पत्रा सम्हालनेमें लग गया। इतने परिश्रम, इतने आयोजन, इतनी चेष्टा और

इतने उदार संकल्पोंको लोचन कोरीके एक लोटा पानीमें डुबाकर दूसरे दिन अनादिने गाँवसे प्रस्थान कर दिया।

उसकी नाव जब गाँवके पूरबी घुमावपर पहुँची, तब अचानक किसीकी पुकार सुनकर वह नावके ऊपर आया, देखा कि हाथमें एक पोटली लिये हुए ललिताके साथ उसकी मा खड़ी है। ललिताकी माने कहा—"महाराज, हमें डुबोकर अकेले चले जा रहे हो?"

अनादिने कहा—"दूसरी बार आकर ले जाऊँगा।"

"तुम्हारी बातपर ही मैंने अपना सब कुछ मिट्टी-मोल बेच दिया—"

माकी बात बीच ही में काटकर ललिता बोली—"मा, तुम जानती नहीं, 'पेड़पर चढ़ाकर नसेनी हटा लेना' और क्या है? इतना सब देख चुकीं, फिर भी तुम्हें अक़्ल न आई!"

इस कुत्सित परिहासको सुनकर अनादि अवाक रह गया। दूसरे ही क्षण नावके भीतर जाकर उसने माँझीको आवाज़ दी—"नाव छोड़ो।"

तीव्र स्वरसे किनारेसे आनेवाली बातोंपर उसने और कान नहीं दिया। जब नाव कुछ दूर निकल गई, तब अनादिने बाहर निकलकर माँझीसे पूछा—"वह लड़की कौन है, जानते हो?"

माँझीने धीरे-धीरे मुसकराते हुए कहा—"क्या आप नहीं जानते, बाबूजी? वह भट्टाचार्य महाराजकी बेटी है।"

अनादिने चकित होकर पूछा—"कैसे?"

"उसकी मा भट्टाचार्य महाराजके यहाँ मज़दूरी करती थी। जातिकी कोरी है।"

अनादि चुप होकर बैठ गया।

अनादि आजकल मास्टरी करता है। फिर भी समाज-सुधार करनेकी झक अभी तक गई नहीं है, इसीलिए हर रविवारको वह कलकत्तेके किसी न किसी पार्कमें व्याख्यान देता दीख पड़ता है।

प्रचारकोंके अभावमें समाज-सुधारक समिति उठ चुकी है।

एक आधुनिक गल्प

सम्पादक महाशयने आकर एक विनीत नमस्कारके साथ कहा—"एक लेखकी ज़रूरत है।"

मैंने पूछा—"किसलिए ?"

"हमारी पत्रिकाके लिए। देर करनेसे काम न चलेगा। कलसे ही छपाई शुरू हो जायगी। एक गल्प चाहिए। न हो, तो कोई रसपूर्ण रचना ही हो। उसके साथ ही यदि सम्भव हो सके, तो एक कविता। और यदि कुछ भी न हो, तो अपने उपन्यासका प्रथम अंश ही दे दीजिए—दो परिच्छेद। उसके बाद प्रत्येक महीने दो-दो, तीन-तीन अध्याय करके छाप दूँगा। 'कापी' दीजिए !"

सम्पादक महाशय कुर्सीपर बैठकर 'कापी' देखनेके लिए कुर्तेके दामनसे चश्मा पोंछने लगे। मैंने भयभीत दृष्टिसे उनकी तरफ़ देखते हुए कहा—"कल देनेसे न होगा ?"

सम्पादकजी बोले—"न। इसी दम चाहिए ! बल्कि मैं उसके लिए बैठा रहूँगा। आप कुछ जलपान और चाय मँगा दीजिए, मैं बैठकमें बैठकर तब तक अखबार देखता हूँ।"

यह कहकर सम्पादकजी बाहर निकल ही रहे थे कि मैंने पुकारकर कहा—"ऐसी हड़बड़ीमें क्या लिख दूँ ? कुछ भी तो दिमाग़में नहीं आ रहा है !"

सम्पादकजी बरामदेसे ही धिक्कारते हुए बोले—"छिः, आप भी क्या आदमी हैं ! मोहन बाबू तीन घंटेमें एक गल्प लिख डालते हैं, बल्लभजी एक साथ ही चार गल्पें गूँथते हैं और चार पहरमें चारोंको खतम करके फेंक देते हैं, और मकरन्दजी सिनेमा देखकर लौटते ही। गल्प लिखनेमें क्या लगता है ? पुराने ढंगकी गल्प लिखनेमें ज़रूर चार दिन लग सकते हैं ; किन्तु आधुनिक ढंगकी गल्प लिखनेमें तो दो सिगरेट और दो प्याला चाय खतम करनेमें जितना समय लगता है, उससे अधिक समय नहीं लगता।"

मैंने बहुत मुरदार होकर कहा—"प्लाट कहाँ है ?"

"प्लाट काहेका ? सारे संसारमें प्लाट बिखरे पड़े हैं। आपसे मैं बातचीत कर रहा हूँ—यही एक प्लाट है ! आपका नौकर बाबूलाल जलपान ख़रीदने बाज़ार गया है, वहाँ वह हलवाईसे दस्तूरी न मिलनेपर मार-पीट कर रहा है—यही एक प्लाट है। आपके दिमाग़में गल्प नहीं आ रही है—यही एक प्लाट है। दिमाग़में कोई गल्प नहीं सूझ रही है, इसी प्लाटको लेकर लिख डालिये न एक गल्प। प्लाट सोचनेमें ही यदि दिन निकल गया, तो गल्प लिखियेगा कब ? मैं बताता हूँ, लिखिये, गल्प दिमाग़में नहीं आ रही है—सिर खुजला रहे हैं—मन भारी है—माथा झनझना रहा है—काग़ज़पर चील-बिलाऊ तसवीरें बना रहे हैं—प्रेमीके आनेकी आशासे अत्यन्त व्याकुल विरहिणी वधूकी भाँति स्टेशनकी सड़ककी ओर ताकते हुए—"

मैंने कहा—"चुप भी रहिये !"

"ओह ! किसी स्त्रीके साथ आपकी उपमा देनेमें आपको आपत्ति होती है ! याद नहीं रहा था। माफ कीजिए । तब लिखिये—कालेज-होस्टलके लड़कोंकी तरह अंगरेज़ी महीनेकी तीसरी तारीखको बापका मनी-आर्डर पानेकी आशामें डाकियेकी राह देखते हुए—ओह, वह देखना भी कैसा करुणापूर्ण देखना है !"

उसी समय बाबूलाल चाय और जलपान लेकर आ गया। वे बोले—यह लो, चाय और जलपान आ गया, इसीको लेकर एक फर्मेकी गल्प गढ़ी जा सकती है। अगर बाबूलाल इसे लेकर न आता, आती कोई कमलनयना गौरांगी तन्वी—"

समझ गया कि इस वक्त सम्पादकजीके दिमागमें ठंडी हवाने बवंडर उठा रखा है। मैंने कहा—"ये सब बातें रहने दीजिए। आपके दिमागमें अगर कोई प्लाट हो, तो कह जाइये, मैं गल्प लिखे देता हूँ !"

"कहा तो—प्लाट बना लीजिए, जो कुछ भी होता है, सभी तो प्लाट है। लिख डालनेसे ही गल्प हो जायगी। आप तो दिन-भर ट्राम और बसपर घूमा करते हैं ; किसी दिनके किसी एक ट्रिपकी कहानी लिख डालिये ; अन्तमें आप देखेंगे कि गल्प बन गई है। और वही होगी असली गल्प—साफ-सुथरी, सहज-स्वच्छ।"

फौरन मेरे दिमागसे बिजलीकी भाँति एक उपाय कौंद गया। मैंने कहा—"अच्छा, आप बाहर बैठिये। मैं किसी दिनके बसके किसी एक ट्रिपकी कहानी साफ-सुथरे, सरल, सहज ढंगसे लिखे देता हूँ।"

सम्पादक महाशय कुछ उत्तर न दे सके। समोसेमें भरे हुए आलूके

छिल्केको दियासलाईकी सींकके सहारे दाँतोंकी संधसे निकालनेकी कोशिश करते हुए बाहर चले गये ।

मैं सोचने लगा कि ट्राम या बसपर कब-कब, कहाँ-कहाँ गया था। कल इडेन गार्डन गया था, परसों कालीघाट, लेक रोड—किसीमें भी तो प्लाट नहीं दीखता। बुधवारको ? बुधवारको बिना किसी कामके, यों ही श्यामबाज़ार गया था। इस निरुद्देश यात्राकी कहानी लिखनेसे ही साफ़-सुथरी, सहज—जो कुछ हो जाय, तो हो जाय। काग़ज़का पैड उठाया। बैठकखानेसे सम्पादक महाशयने आवाज़ दी—"आधुनिक ढंगकी हो और कोई डेढ़ फर्मेसे बड़ी न हो। और थोड़ा करुणा-रस, थोड़ा हास्य-रस—"

मैंने कहा—"अच्छा। आप चुप रहिये। ज़रूरत हो, तो नौकरसे और एक प्याला चाय मँगा लीजिए, नहीं तो बैठे-बैठे सिनेमाकी किताबकी तसवीरें देखिये। मैं लिखना शुरू करता हूँ। बुधवारके ट्रिपका हाल ही लिखता हूँ।"

मैंने लिखाः—

× × × ×

श्यामबाज़ारका चौराहा धूपमें नहाये हुए इन्द्रलोककी तरह दीखता था। घरमें अच्छा नहीं लग रहा था, इसलिए बाहर निकला था; बाहर अच्छा नहीं लगा, इसलिए घूमनेकी इच्छा हुई।

लाल रंगकी एक छोटी बस! भीतर लद चुकी थी, तेरह यात्री थे—तेरह नहीं चौदह, क्योंकि तेरह तो बैठे थे और एक आदमी एक कोनेमें खड़ा था। मैं चढ़कर ड्राइवरकी बग़लमें बैठ गया। भीतरके यात्रियोंकी

बातचीत सुनकर मालूम हुआ कि सभी अत्यन्त शोकमें हैं। एकने कहा—"लेकिन बड़ी अचानक मौत हुई !"

दूसरा—"मैं तो सुनकर धकसे रह गया। उनकी लिखी हुई वह किताब—'आलू-परवल',—"

तीसरा—" 'आलू-परवल' नहीं, किताबका नाम है 'धूम्र पटल', जिसमें विधवा केतकी मछलीकी तरफ़ देख-देखकर लम्बी साँसें लेती है।"

चौथा—"उनकी कविता कैसी आश्चर्यजनक होती थी !"

पाँचवाँ—"और गीत ?"

छठा—"और गल्प ? कैसी चमत्कारपूर्ण करुणा—"

सातवाँ—"और उनके दोनों एकांकी नाटक—"

आठवाँ—"माखनलालका कैसा अद्भुत चरित्र अंकित किया—"

नवाँ—"और उसके बापका—"

दसवाँ—"अगर गणेश बाबू ज़िन्दा रहते, तो गाल्सवर्दी या बर्नर्ड शाकी तरह—"

ग्यारहवाँ—"गणेश बाबू-जैसा लेखक उठ गया, यह देशका दुर्भाग्य नहीं है तो क्या—"

बारहवाँ—"उनके है कौन-कौन ?"

तेरहवाँ—"स्त्री है। और वह स्त्री भी कैसी स्त्री ? साक्षात सरस्वती, उसीके स्पर्शसे ही तो गणेश बाबूकी प्रतिभा जगी—"

पहला—"सो कैसे ?"

दूसरा—"आप नहीं जानते ?"

तेरहवाँ—"नहीं जानते ? बात यह हुई कि उनके विवाहमें उनका कोई

भी नाते-रिश्तेदार शामिल नहीं हुआ ! तब वे मेरे पास आकर बोले, रतन बाबू, चलना ही होगा आपको ! उनका आग्रह देखकर—"

तीसरा—"अरे उनके आग्रहकी न पूछिये। उसका परिचय तो मुझे उनके लड़केके अन्नप्राशनपर मिला। मुझे बुखार था, कुछ खाऊँगा नहीं, यह निश्चय करके लेटा था। शामको दरवाज़ेपर मोटरका भोंपू बोला। लिहाफ़से निकलकर छज्जेपर जो आया, तो देखा कि गणेश बाबू बुलानेके ख़ुद आकर मौजूद हैं !"

चौथा—"ऐसा उदार मनुष्य देखनेको नहीं मिलता। मरनेसे एक दिन पहले आकर मुझसे कहा था कि उनके ससुरके श्राद्धमें मुझे ही सब देखना-सुनना पड़ेगा—"

दूसरा—"अरे महाशय, लड़के और ससुरकी बातें रहने दीजिए। स्त्रीकी बात कहिये, रतन बाबू—साक्षात सरस्वती कैसे है ?"

तेरहवाँ—"वह क़िस्सा ज़रा लम्बा है, सुनियेगा ? अच्छा लाइये, एक बीड़ी तो दीजिए। थैंक्स। मैं उन दिनों मैकेंज़ी लायलके नीलामघरमें काम करता—"

दूसरा—"इससे उनका क्या सम्बन्ध है ?"

तेरहवाँ—"सम्बन्ध है, सुनिये तो। हाँ, तो मैं एक दिन नीलामघरमें बहुतसे नीलामी फर्नीचरपर नम्बर लगा रहा था, इतनेमें एक भले आदमीने आकर पूछा, क्या आबनूसका कोई बुक-केस होगा ? एक था। मैंने कहा, होगा। उन्होंने दाम जानना चाहे। मैंने कहा, नीलाममें बोली कितनी उठेगी, यह तो नहीं कह सकता; लेकिन इस वक्त लेनेसे सौ रुपया होगा। उन्होंने बुक-केस देखा, उसके बाद कोई पाँच मिनट तक उसपर

हाथ फेरकर एक लम्बी साँस छोड़ते हुए बोले, पसन्द तो बहुत है, पर रुपया पूरा न पड़ेगा। मुझे बहुत दुःख हुआ। मैंने कहा, अच्छा, आप रुपयेका बन्दोबस्त कीजिए, मैं इसकी बोली रुकवा रखूँगा। उन भलेमानसने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और कहा, इसे रखे रहियेगा दादा, यह न मिलनेसे मेरा काम न चलेगा।"

दूसरा—"बुक-केससे उनकी स्त्रीका क्या सम्बन्ध ?"

तेरहवाँ—"सारे केससे ही स्त्रीका सम्बन्ध है, नाटू बाबू ! ज़रा सब्र कीजिए, बतलाता हूँ। दूसरे दिन वे फिर आये और बहुत देर तक बुक-केसपर हाथ फेरते रहे—ठीक उसी भाँति, जैसे सोई हुई नववधूके शरीरपर कोई नव-विवाहित वर हाथ फेरता है ! फिर एक गहरी साँस लेकर चले गये। उसके बाद लगातार तीन दिन तक ऐसा ही हुआ। एक दिन मैंने पूछा, आप ऐसा क्यों करते हैं, बतलाइये तो ? आपका नाम क्या है ? वे बोले—मेरा नाम है गणेश चटर्जी। मैं ऐसा क्यों करता हूँ, सुनियेगा ? मेरे साथ चलना होगा, चलियेगा ?

"उस दिन कोई काम-काज था नहीं, इसलिए मैं भी निकल पड़ा। हम दोनों गरानहट्टा स्ट्रीटमें जा मौजूद हुए। मकान किसी गृहस्थका न था। ऊपर चढ़े। ओह, कैसा अद्भुत रूप था ! सत्रह-अठारह वर्षकी एक युवती किताब पढ़ रही थी। झटपट किताब फेंककर, मेरे सामने ही, गणेशके गलेसे लिपटकर बोली—'आज ले आये ?' गणेशने मुँह नीचा करके कहा—'नहीं ला सका।' युवती तुरन्त ही गणेशको छोड़कर बिछौनेपर जा पड़ी और उसने फूट-फूटकर रोना शुरू कर दिया।

"गणेशने आँखें पोंछकर मुझसे कहा—'देखते है ?' सब कुछ देखा-सुना।

युवती विधुमुखी नर्तकीकी लड़की थी। गणेश उसके मास्टर थे, बिना पैसेके पढ़ाते थे। दोनोंमें गहरा प्रेम था। युवतीको शौक़ हुआ आबनूसका बुक-केस लेनेका ! इसीलिए गणेश इतने व्याकुल थे, और वह व्याकुलता भी कैसी व्याकुलता थी !"

दूसरा—"उस व्याकुलताको छोड़िये, यह कहिये कि उसके बाद हुआ क्या—"

तेरहवाँ—"मैंने कहा, आप चिन्ता न कीजिए। मैं सब ठीक कर दूँगा। कल आइयेगा। दूसरे दिन गणेश बाबू आये। उनके मुखपर आशाकी चमक थी ! कैसी चम—"

दूसरा—"अरे रहने भी दीजिए चमक—असली बात कहिये न।"

तेरहवाँ—"कहता तो हूँ। मैंने चुपकेसे टिकट बदलकर सिर्फ साढ़े सत्ताईस रुपयेमें गणेशको बुक-केस दिला दिया। गणेशने मेरे पैर पकड़ लिये—"

दूसरा—"आपने ब्राह्मणसे पैर छुआये ?"

तेरहवाँ—"कृतज्ञतावश, सिर्फ कृतज्ञतावश ! उन्हें तो जात-पाँतका विचार था नहीं ! जो हो, गणेश बुक-केस ले गये। शामको मैं भी गरान-हट्टा गया। सीधे ऊपर चढ़कर देखता क्या हूँ कि उसी बुक-केसपर आमने-सामने सिर रखे हुए गणेश और वही युवती इन्दुमुखी बैठी है—उनके नेत्रोंमें प्रगाढ़ प्रणयकी गम्भीर ज्योति—"

दूसरा—"हुआ क्या, यह कहिये न, रतन बाबू !"

तेरहवाँ—"हुआ क्या ? जो होता है, और जो होना उचित था—गणेश और इन्दुमुखीका विवाह। और कोई तो विवाहमें आया नहीं, मैं ही वर-पक्षकी ओरसे समधी बनकर गया था।"

दूसरा—"विधुमुखी गणिकाकी लड़कीके साथ तो विवाह हुआ, और हरी बाबू ससुरके श्राद्धकी बात कहते हैं ?"

चौथा—"अरे भाई, तुम्हारे सामने तो कुछ कहना गुनाह है ! लगते हैं जिरह करने। हर बातमें जिरह, जिरह, जिरह ! लड़कीके विवाहके बाद ही विधुमुखीने कलामन्दिर-थियेटरके ऐक्टर गोविन्द कत्थकके साथ माला बदलकर गन्धर्व विवाह कर लिया था। वही गोविन्द कत्थक मर गये, आज सात दिन हुए।"

दूसरा—"उसके बाद रतन बाबू ?"

तेरहवाँ—"उसके बादसे ही गणेश बाबूके लेख निकलने शुरू हुए—ओह, कैसे गजबके लेख थे ! गल्प, कविता, उपन्यास ! उपन्यास, कविता, गल्प ! और इन्दुमुखी दिन-रात प्रूफ देखती—भूख नहीं, नींद नहीं—उसी आबनूसके बुक-केसके सामने बैठी हुई—"

पहला—"गणेश बाबूके बैठकखानेमें दाहने कोनेमें जो बुक-केस है, वही तो ?"

दूसरा—"नहीं, बीचमें जो है।"

तीसरा—"ठीक बीचो-बीचमें नहीं कह सकते। थोड़ा-सा कोनेकी तरफ हटा—"

तेरहवाँ—"जहाँ भी हो, बुक-केससे ही सब हुआ—इसी बुक-केससे ही मिलन, लेख, कविता, गल्प, सब कुछ—"

इसी समय एक गम्भीर कंठस्वर सुनकर मैंने मुँह फेरा। देखा, जो सज्जन बसके कोनेमें खिड़कीसे टिके अब तक चुप खड़े थे, वे बोल रहे हैं—"आप लोगोंने सभी कुछ कह डाला ; लेकिन आखिरमें ठीक-ठीक पूरा न कर

सके। बुक-केससे ही सब कुछ हुआ, क्योंकि उसी बुक-केसमें एक चोर दराज़ थी, जिसमें किसीकी लिखी हुई बहुत-सी 'मैनुस्क्रिप्ट्स' (पांडुलिपियाँ) थीं। गणेश बाबू धीरे-धीरे उन्हींको अपने नामसे छपाने लगे—"

तेरहो यात्री एक साथ चिल्ला उठे—"झूठी बात! आप गणेश बाबूका अपमान करते हैं! झूठा!"

इसपर वे सज्जन रत्ती-भर भी विचलित हुए बिना बोले—"नहीं, सच बात है। स्वयं गणेश बाबूने आज ही मुझसे कहा था—"

यात्री-दल—"स्टूपिड! झूठा! वे तो कल मर गये—"

वे सज्जन बोले—"जिनके मरनेकी खबर छपी है, वे थे गणेशचन्द्र गंगोली एटर्नी, जिन्होंने क़ानूनपर किताब लिखी है—"

यात्री-दल—"तब आप कुछ नहीं जानते!"

उन सज्जनने मन्द हास्यसे कहा—"मैं जानता हूँ, क्योंकि गणेश बाबूकी जिस पुस्तकमें विधवा केतकी मछलीकी ओर देखती है, वह पुस्तक न तो 'आलू-परवल' है और न 'धूम्रपटल'; उसका नाम है 'जटा-मुकुट'। गणेश बाबूने आज तक आबनूसका बुक-केस आँखसे भी नहीं देखा। उन्होंने गरानहट्टाकी विधुमुखी नर्तकीकी लड़कीसे विवाह नहीं किया, उन्होंने बर्दवानके नरहरि शर्माकी लड़कीसे विवाह किया है। वे सियालदह स्टेशनके माल-गोदाममें काम करते हैं, और इसी क्षण इस बससे उतर रहे हैं। मेरा ही नाम गणेश चटर्जी है, और मैं आप लोगोंमें से एकको भी नहीं पहचानता। नमस्कार।"

यह कहकर वे सज्जन उतरकर चले गये।

यात्री-दल एक साथ बोल उठा—"चकमेबाज़ कहींका! क्या हम सभी झूठे—"

मैं और कुछ न सुन सका। झटसे उतरकर गणेश बाबूके पीछे लपका—मैं अपनी नई पुस्तक उन्हें देना चाहता था; लेकिन भीड़में उनका पता न लग सका।

इतिः

सम्पादक महाशयने आकर पूछा—"पूरी हो गई?"

मैंने लेख दे दिया। पढ़कर बोले—"गल्प बहुत बड़ी कर डाली। आधुनिक ढंगकी नहीं हुई।"

मैंने सकुचाकर कहा—"तब और किस तरह होती?"

सम्पादकजी बोले—"बुक-केस खरीदनेके बाद लिखिये—'देखा कि बुक-केसके ऊपर सिर रखे, मुँह-से-मुँह लगाये इन्दुमुखी और गणेश पास-पास बैठे हैं—मरे हुए। बुक-केस पानेकी खुशीमें दोनोंके हार्ट फेल हो गये, और वही बुक-केस हुआ उन लोगोंका कफ़न। बस, उसी दिनसे मैंने मैकेंज़ी लायलके यहाँकी नौकरी छोड़ दी।' "

अन्तिम पृष्ठ

ठीक याद नहीं आता, फिर भी इतना जान पड़ता है कि सवेरे दरवाज़ा खोलते ही सबसे पहले पड़ोसके मकानके नौकर गोपीलालका मुँह देखा था, क्योंकि गोपी था बड़ा प्रेमी जीव। वह रोज़ रातको बारह बजेके बाद अपनी आखिरी ड्यूटी—यानी मालिकके पैरोंमें पुटपुटी लगाकर उन्हें सुला देना—समाप्त करके गलीके मोड़वाले खाली मकानके चबूतरेपर बैठकर तान अलापता था :—

"तुम्हारे प्रेममें पागल बने दिन-रात फिरते हैं!"

शायद यही हुआ होगा, नहीं तो और कोई कारण न था, जो उस दिन सवेरेसे शाम तक चारों पहर प्रेम-सम्बन्धी बातोंमें ही परेशान होना पड़ा।

पहले पहरमें मेरे मित्र यामिनीकी चिट्ठी मिली—उसे अपनी स्त्रीको दो-एक दिनके भीतर ही ले आना होगा, क्योंकि पूसमें यात्राकी सायत नहीं है, और माघ तक वह ठहर नहीं सकता। तब तक गोभी और मटरकी फलियोंका स्वाद खराब हो जायगा। इसके अलावा—इन बातोंको जाने दीजिए, इनकी ज़रूरत नहीं—असली बात यह थी कि उसे रुपया चाहिए।

स्त्रीको बुलानेके खर्चके लिए कम-से-कम पचास रुपये तारसे भेजने पड़ेंगे। काम बहुत ज़रूरी था, इसलिए खुद ही डाकखानेकी तरफ़ चला। चौराहेपर

मुड़ते ही एक रिक्शेवालेका धक्का लगा। बिना कुछ कहे ही मैं ज़मीनपर लम्बा हो गया। जूतेका फीता और बदनका चमड़ा थोड़ा-सा फट गया!

दोपहरको टेलीफोन द्वारा 'दीपशिखा' के सम्पादकका हुक्म आया कि उनकी पत्रिकाके लिए एक प्रेमकी कविता देनी होगी। कविता लिखनेके लिए, दक्षिणकी खिड़की खोलकर, फूले हुए पौधोंके दो-चार गमले छज्जेपर सजाकर, उनकी ओर देखते हुए क़लम क़ुतरने लगा; लेकिन किसी तरह भी मनमें रसका संचार न हुआ। बड़ी देर तक व्यर्थ चेष्टा करके अन्तमें मैंने झुँझलाकर लिखा—

"जीवन-भर है रहा प्रेमसे जिसका छत्तिस-सा सम्बन्ध;
उससे प्रेम-काव्य जो माँगे, निश्चय मानो है वह अन्ध!"

तीसरा चरण लिखनेके लिए लेखनी चलानेवाला ही था कि नीचे आँगनसे जूतोंकी चर्रमर्रके साथ किसीने आवाज़ दी। छज्जेपर खड़े होकर देखा, तो मुहल्लेके 'यंग मेन्स क्लैसिको रोमैन्टिक डिबेटिंग क्लब' के दोनों सेक्रेटरी कन्हाई और नरेन्द्र हैं! उनसे बैठनेको कहूँ, तो उनकी वक्तृता सुननी पड़ेगी, इस डरसे मैंने छज्जेके ऊपरसे ही पूछा—"अचानक कैसे?"

कन्हाईने कहा—"ज़रा जटिल समस्या है। मीमांसाके लिए आये हैं।"

सप्ताहमें दो-तीन बार इन लोगोंकी समस्या उपस्थित होती थी, और उसके अनिवार्य परिणाम-स्वरूप मुझे हर हफ़्ते 'होम-लाइब्रेरी' की किताबें ठीक-ठाक करनी पड़ती थीं, इसीलिए समस्याकी बात सुनते ही मैं कुछ खिन्न हुआ। डरकर मैंने पूछा—"कैसी समस्या? राजनैतिक?"

कन्हाईने उत्तर दिया—"ऊँहूँ, प्रेमनैतिक।"

जान बची। प्रेमके सम्बन्धमें मैं विशेषज्ञ नहीं, और न इस विषयका कोई ग्रन्थ ही मेरे यहाँ था। इसीलिए मैंने साहसके साथ कहा—"बहुत अच्छा। बताओ।"

कन्हाईने कहा—"प्रेम है या नहीं? यदि होता है, तो उसमें पात्र-अपात्र होता है या नहीं? प्रेमकी मीयाद कितने दिन होती है? अर्थात्—"

जान गया कि प्रश्नोंका सिलसला दूर तक जायगा, इसलिए बीच ही में टोककर कहा—"इसमें समस्याकी क्या बात है? सीधे राधाकान्त दादाके यहाँ चले जाओ और उनसे पूछ लो—"

कन्हाईने कहा—"देखिये, कल हम लोगोंकी डिबेट है—"

मैंने कहा—"ठीक तो है। प्रेमके बारेमें राधाकान्त दादाके समान 'अथारिटी' इस मुहल्लेमें नहीं है।"

कन्हाईने कहा—"यह मैं जानता हूँ; लेकिन वे तो बिलकुल बात ही नहीं करते!"

मैंने कहा—"उनसे बात निकालना सीखना होगा। अच्छा, इस वक्त तो जाओ, शामको वहाँ एक साथ चलकर बैठा जायगा। सवालोंको लिखकर ले आना।"

कन्हाई और नरेन्द्र चले गये।

शामको नरेन्द्र और कन्हाईको साथ लेकर राधाकान्त दादाके बैठकखानेपर पहुँचकर दरवाज़ेका कुँडा हिलाया। आवाज़ आई—"भीतर आओ।"

भीतर दाखिल हुए। राधाकान्त दादा एक आरामकुर्सीपर लम्बायमान होकर, मुँहसे हुक्केकी सटक लगाये, ऊँघ रहे थे, आँखें मलकर हम लोगोंकी ओर देखा और कहा—"अचानक!"

मैंने कहा—"अचानक आनेकी ज़रूरत ही आ पड़ी।"

राधाकान्त दादा सीधे होकर बैठ गये और बोले—"अगर बहुत ज़रूरी न हो, तो बिन्दीको पुकारूँ चाय ले आये।"

कन्हाई और नरेन्द्रने एक साथ ही उत्तर दिया—"इस सब झंझटकी ज़रूरत नहीं है। हम लोग कुछ प्रश्न लेकर आये हैं, जवाब लेकर झटपट लौटना है।"

राधाकान्त दादा फिर आरामकुर्सीपर लम्बायमान हो गये और मेरी ओर ताकते हुए बोले—"यह समय तो प्रश्नोंके जवाब देनेका नहीं है, यह तो स्वप्न देखनेका समय है—"

मैंने कहा—"आपको इस बेवक्त परेशान करनेके लिए इसलिए बाध्य होकर आना पड़ा कि कल इन लड़कोंकी सभा है—उसमें प्रेमके सम्बन्धमें अनेक जटिल तत्त्वोंपर वाद-विवाद होगा। कुछ विषयोंपर आपकी राय जानना ज़रूरी है, क्योंकि—" यह कहकर मैं कुछ इधर-उधर करने लगा।

राधाकान्त दादा बोले—"क्योंकि तुम सबका विश्वास है कि प्रेमके विषयमें मैं एक विशेषज्ञ हूँ। सिर्फ तुम लोगोंका ही नहीं बूढ़े अनुकूल बाबा तकका यही विश्वास है, उस दिन वे दादीके साथ लड़कर—खैर, जाने दो; प्रश्न क्या हैं, पढ़ो ज़रा सुनूँ।"

नरेन्द्रने एक कागज़ उनके हाथपर धर दिया। राधाकान्त दादाने पढ़कर कहा—"प्रश्न तो तनिक भी जटिल नहीं हैं; लेकिन तुम लोग लड़के हो, तुम इन बातोंको लेकर क्यों माथा-पच्ची करते हो?"

नरेन्द्रने कहा—"न करनेसे डिबेटिंग-क्लब टूट जायगा! कोई-न-कोई 'सबजेक्ट' तो चाहिए ही। 'पालिटिक्स'पर कुछ कहनेका उपाय नहीं—

आर्डिनेन्स लगा है ! लाठी, कुश्ती, छुरा-छुरीके खेल खेलें अथवा उनकी आलोचना करें, तो सी० आई० डी० ! अस्पृश्यता और शास्त्रोंपर कुछ कहने जाँय, तो संस्कृत जानना ज़रूरी है, इसीलिए—"

राधाकान्त दादा काग़ज़ मुँहपर रखे अधलेटी अवस्थामें चुपचाप थे, नरेन्द्रकी बात सुनकर उठ बैठे, और तमककर बोले—"और कुछ करनेका उपाय नहीं, तो प्रेमको लेकर खींचातानी करोगे ! प्रेम इतनी आसान बात नहीं। यह एक बड़ा सार्वजनीन व्यापार है—"

नरेन्द्र टोंककर बोला—"ज़रा-सा ठहर जाइये, हम लोग नोट किये लेते हैं। कन्हाई—"

कन्हाईने जेबसे नोट-बुक निकाली। मैंने कहा—"तो राधाकान्त दादाकी राय यह हुई कि—"

राधाकान्त दादाने कहा—"प्रेम है। लेकिन वह एक नशा मात्र है—गाँजा, अफीम, चरस आदिसे कुछ नरम ढंगका। इन चीज़ोंकी तरह प्रेम-सेवनसे भी नशा चढ़ता है, जिससे छकड़ेका टट्टू उच्चैश्रवा घोड़ा, खपरैलका मकान ताज महल और परनाला साक्षात गंगाजी-जैसा जान पड़ता है।"

यह कहकर राधाकान्त दादा फिर कुर्सीपर लम्बे हो गये। समझा कि वे और कुछ कहनेको राज़ी नहीं हैं। नरेन्द्रने हताश होकर मेरी तरफ़ ताका। मैं जानता था कि जब तक राधाकान्त दादाकी बातका प्रतिवाद न किया जाय, तब तक उनसे बात नहीं निकाली जा सकती, इसलिए नरेन्द्रका मतलब पूरा करनेके लिए मैंने कहा—"राधाकान्त दादाने कहा और हम सबने सुना ; लेकिन विश्वास नहीं होता।"

"हाँ !—" कहकर राधाकान्त दादा फिर सीधे होकर बैठ गये और

बोले—"तब तो प्रेमसे कभी तुम्हारा परिचय हुआ ही नहीं। इस चीज़का पहला आक्रमण कितना भीषण होता है, और इसका अनिवार्य फल, यानी मत्तता कितनी घातक होती है, यदि तुम जानते होते, तो बच्चोंकी तरह मेरी बातपर अविश्वास न करते। अच्छा तो सुनोगे ?"

मतलब हल हो गया, नरेन्द्र और कन्हाई एक साथ ही उत्साहसे बोल उठे—"हाँ, हाँ, कहिये !"

राधाकान्त दादाने कहा—"तुम लड़के हो, तुम्हें यह सुनना उचित नहीं है, फिर भी सुन लो। लेकिन इसे एक 'थ्योरी' के भाष्यके तौरपर ही सुनना।" फिर मेरी ओर घूमकर बोले—"मेरा वह सात नम्बरवाला घर तो देखा है—वह घर जिसकी छतपर छोटी मुँडेर है, गलीका आखिरी मकान ?"

सभीने सिर हिलाकर 'हाँ' किया।

राधाकान्त दादाने कहा—"अच्छा, तो सुनो, कोई बीस वर्ष पहलेकी बात कहता हूँ। बाबूजी और माताजी—दोनों ही गृहस्थीके जंजालसे इस्तीफा देकर काशीवास करते थे और मैं अकेला नौकर और रसोइयेके साथ कलकत्तेमें गृहस्थी फैलाये बैठा था। तुम्हारी पहली भाभी तब आने आनेको कर रही थीं, पर फेल हो जानेके डरसे मैं विधिपूर्वक नहीं ला सकता था—बैसाखमें परीक्षा समाप्त होनेकी प्रतीक्षामें था। ठीक प्रतीक्षा तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि तब विवाह करनेकी बहुत इच्छा भी नहीं थी। छतके ऊपरवाले कमरेमें बैठा-बैठा 'अभिज्ञान शाकुन्तल,' 'मैकबेथ' और 'पैराडाईज़ लास्ट' को लेकर ही दिन काटता था। उस समय इसी तरहके जीवनका अभ्यास हो गया था, एक नया व्यक्ति आकर मेरी खबरदारी करे यह कल्पना भी सहन नहीं होती थी।

उस दिन सवेरे नौकर मुझे बाहरके कमरेमें बुला ले गया, मकान किराये लेनेके लिए कोई आया था। मकान खाली था ही। बाहरके कमरेमें एक सज्जन कुर्सीपर बैठे थे—उन्हींको मकानकी ज़रूरत थी। मैंने पूछा—'बाल बच्चोंके साथ रहियेगा या मेस कीजियेगा।'

उन सज्जनने विनीत भावसे उत्तर दिया—'बाल-बच्चे ज़्यादा नहीं हैं। मैं हूँ, मेरी छोटी बहन है, मेरा—'

बात काटकर मैंने पूछा—'कितने दिन रहियेगा?'

उन्होंने कहा—'बराबर रहनेका इरादा है।'

मैंने कहा—'भाड़ा तीस रुपये होगा।'

उन्होंने जेबसे दस-दसके तीन नोट निकालकर :टेबिलपर रख दिये और बोले—'मणिगोपाल चौधरीके नामसे जमा कर लीजिए—परसों हम लोग आयँगे।'

× × × ×

सात नम्बरके मकानके किरायेदार परसों आये या पाँच दिन बाद, यह खबर मैंने नहीं ली। एक दिन मैं अपनी छतपर टहल रहा था कि अचानक गानेकी आवाज़ सुनकर सात नम्बरके मकानकी ओर नज़र गई। छतकी मुँडेर तीन फीट ऊँची थी, कुछ भी न देख सका; किन्तु मनमें जान पड़ा कि गानेवाला पुरुष नहीं, स्त्री है, और सुन्दरी है।"

अब मैंने टोंककर कहा—"अचानक इस तरहका अनुमान करनेका क्या कारण है, राधाकान्त दादा?"

राधाकान्त दादाने गरम होकर कहा—"मृत्युका कोई कारण नहीं होता। सुने जाओ। वैसा आश्चर्यजनक सुर मैंने जीवनमें कभी नहीं सुना, एकदम

स्तम्भित होकर खड़ा रह गया। धीरे-धीरे गाना समाप्त हो गया, पर मैं हिल-डुल न सका, मुँह बाये सात नम्बरकी छतकी तरफ देखता रहा। कोई पाँच मिनट बाद दीख पड़ा एक सिर और एक गुच्छा घुँघराले बाल। उसके कुछ क्षण बाद ही मुख समेत सिर दीख पड़ा। जैसा सुर वैसा ही आश्चर्यजनक रूप ! उसका वर्णन नहीं करूँगा। उस मुखकी मालिकिनने पंजेके बल खड़े होकर मुँडेरपर झुकते हुए मेरी छतकी ओर देखा। ज़्यादा दूरी तो है नहीं, बीचमें कोई कट्ठा-भर ज़मीनपर महावीर धोबीकी दो खपरैलें ही तो हैं, हम दोनोंकी चार आँखें हुईं।

मैंने लज्जासे मुँह फेर लिया ; लेकिन कनखियोंसे एक बार फिर देखा तो उस छतपर लज्जाकी बला एकदम नदारद थी। तब कुछ साहस हुआ। छतकी ओर जाकर मैंने पूछा—'तुम लोग, जान पड़ता है, नई आई हो ? तुम्हारा नाम क्या है ?'

बहुत मीठी आवाज़में जवाब आया—'नलिनी।'

और कुछ पूछनेकी हिम्मत न हुई। कुछ एक-आध बात कहकर मैं अपने कमरेमें लौट आया और 'मैकबेथ' खोलकर बैठा ; किन्तु पढ़नेकी एकदम इच्छा न हुई। घुँघराले बालोंका एक सिर और एक अत्यन्त सुन्दर मुखड़ा बार-बार मनमें आने लगा।"

उसी समय मैंने देखा कि कन्हाई मुसकराकर नरेन्द्रके चुटकी काट रहा है—मैंने क्रुद्ध दृष्टिसे कन्हाईकी ओर देखा। वह गम्भीर होकर बैठ गया। इस बीचमें राधाकान्त दादा चुरुट और दियासलाईका संयोग स्थापित करनेमें व्यस्त थे। चुरुटका एक कश खींचकर नाकसे धुँआ निकालते हुए कहने लगे—

"जान-पहचान होनेमें देर न लगी। दूसरे दिन तीसरे पहर नीचे बैठकमें बैठा था, देखा कि 'सेलर सूट' पहने कोई सोलह वर्षका एक लड़का हाथमें किताबें दाबे सड़कपर आ रहा है—शायद स्कूलसे लौटकर। खिड़कीसे देखते ही मैं चौंक पड़ा। सिरपर 'स्ट्रा हैट' था, इसलिए बाल तो दिखलाई नहीं पड़ते थे ; लेकिन चेहरा हूबहू नलिनी-जैसा था ! मैंने उसे पुकारा। कमरेमें घुसते ही उसे अपने पास खींचकर मैंने पूछा—'तुम शायद हमारे सात नम्बरके मकानमें रहते हो ?'

लड़केने बहुत आदरसे कहा—'जी हाँ। क्यों ?'

थोड़ा-सा हँसकर मैंने कहा—'छतपर जो गाना गाती हैं, वे—'

प्रश्नको पूरा करनेमें बड़ी लज्जा मालूम हुई। देखा कि लड़केका भी मुँह लाल हो गया है।

वह बोला—'मेरी बहन हैं। हम दोनों जुड़वाँ हैं।'

कुछ हिम्मत करके मैंने कहा—'अपनी बहनसे कहना कि उनका गाना मुझे बहुत अच्छा लगता है।'

लड़केने मुँह नीचा करके हँसते हुए कहा—'अच्छा।'

× × ×

गाना सुननेके बाद बातचीत, उसके बाद मेरा प्रेम-निवेदन और नलिनीका कौतुक-भरी मुसकानके साथ उसे स्वीकार कर लेना आदि तमाम संलग्न बातें एक सप्ताहके भीतर ही हो गईं। दोपहरमें नलिनीसे भेंट नहीं होती थी। उसने बताया था कि उसकी कोई मासी हैं, जो सवेरेसे आकर रसोई-चौका समाप्त करके सारा दोपहर नलिनीके घर काटती हैं और शामको जाती हैं, इसीलिए दोपहरको वह छतपर नहीं आ पाती। सिर्फ शामको

छोड़कर हम दोनोंको एक-दूसरेको देखनेका चारा न था। इसलिए जिस तरह बहुत दिनोंका रोगी अन्न-पथ्य मिलनेके दिनकी प्रतीक्षा करता है, उसी तरह मैं सुबहसे लेकर सारा दिन प्रतीक्षामें बैठा रहता। उस प्रतीक्षाकी तीव्रता क्या इस समय ज़बानसे कहकर तुम्हें समझा सकूँगा? जान तो नहीं पड़ता। सारी दुपहरिया छतके ऊपरवाले कमरेमें लेटे हुए किसी और छतपर पैरकी आवाज़ सुननेके लिए कान लगाये रहना और महाबीर धोबीके बेलके पेड़से बेल गिरनेकी आवाज़ सुनकर उछल पड़ना—सो भी दो-एक दिन नहीं, पूरे पाँच महीने—ये सब बातें स्वयं अनुभव किये बिना व्याख्यान देकर नहीं समझाई जा सकतीं।"

इसी समय नरेन्द्रने एक लम्बी साँस छोड़ी। उसके पासवाले मकानके भड़ैत परिवारमें किसीकी मेहरबानीसे वह भी तीन बार फेल हो चुका है, यह मैं सुन चुका था—जान पड़ा कि नरेन्द्र सुस्त हो गया।

राधाकान्त दादा अपने प्रथम प्रेमकी अनुभूतिको इस तरह रसमें लपेट रहे थे कि बेचारा नरेन्द्र कहीं विपत्तिमें न पड़ जाय, यह सोचकर मैंने कहा—"मिलनमें और कितना बाकी है, दादा?"

राधाकान्त दादाने ज़ोरका एक कश खींचकर चुरुटका मुँह प्रज्वलित किया और कहा—"अभी होता है, सुनते जाओ। केवल मुँहसे ही प्रेम-निवेदन करके और उसके स्वीकार हो जानेसे ही मैं प्रसन्न न हो सका। अच्छा भोजन, फल-फलहरी, मिठाई मैं कभी अकेले न खाता; अपने हिस्सेका बारह आना भाग रूमालमें बाँधकर यथास्थान फेंक देता था। महीना पूरा होनेपर नलिनीके बड़े भाई मणिगोपालने मकानका भाड़ा चुकाया। मैंने बहुत अनिच्छासे, सिर्फ इसी डरसे कि बादमें कहीं उन्हें कुछ शक न

हो जाय, ले तो लिया ; लेकिन उसी दिन शामको एक चिथड़ेमें बाँधकर नलिनीकी छतपर फेंक दिया और कहा—'तुम्हारे भाईने भाड़ेका रुपया दिया है, लो, तुम अपने पास जोड़ना।'

नलिनीने ज़रा थमकर खड़े-खड़े कुछ सोचा और उठा लिया। इसी तरह चार महीने कट जानेपर आखिर एक दिन—अच्छा, अब रहने दो इसे ?"

कन्हाई और नरेन्द्र 'हाँ-हाँ' कर उठे। मैंने भी कहा—"बाक़ी भी सुना दीजिए, दादा !"

राधाकान्त दादाने अत्यन्त करुण स्वरमें कहा—"अच्छा ! आखिरकार सहसा एक दिन सवेरे दरवाज़ेपर कुछ ज़ोरकी चिल्लाहट सुनकर मैंने ऊपरसे जो देखा, तो सारी गली लाल पगड़ियोंसे भरी है—नलिनीके मकानके ठीक सामने आधा दर्जन सार्जेन्ट खड़े हैं। उतरकर गलीमें आया, तो नलिनीके दरवाज़ेपर ताला बन्द ! दारोग़ाने पूछा—'यह मकान आपका है ?'

मैंने कहा—'हाँ क्यों ?'

'खानातलाशी लेंगे !'

समझमें न आया कि मामला क्या है। फिर उस वक्त मेरी उम्र भी छब्बीस ही वर्षकी थी। पुलिसको देखकर कुछ डर भी लग रहा था, बोला—'लीजिए खानातलाशी !'

इधर मन-ही-मन ईश्वरसे प्रार्थना करने लगा कि नलिनी घरपर न हो। ताला तोड़कर दारोग़ा भीतर घुसे ! घर एकदम खाली, कोई भी नहीं, सिर्फ नलके पास दो चार फूटी हाँडियाँ पड़ी थीं।

दारोग़ाने मेरी ओर घूमकर पूछा—'ये लोग गये कहाँ ?'

मेरा मुँह सूख गया, बोला—'कौन लोग ?'

'नीरद खास्तगीर और विनोद चौधरी ?'

मैंने आश्चर्यसे कहा—'उन्हें तो मैं नहीं पहचानता !'

दारोगाने तीव्र दृष्टिसे मेरी ओर ताकते हुए कहा—'मकान आपका है और आप—'

मैंने कहा—'मेरे किरायेदारका नाम मणिगोपाल चौधरी है।'

'इस मकानमें कै आदमी थे ?'

अनायास ही मैं झूठ बोल गया—'सिर्फ एक सज्जन थे !'

उसके बाद सी० आई० डी० के आफिस जाना पड़ा ; लेकिन बहुत-कुछ जिरह करनेपर भी साहब मेरे मुँहसे नलिनीकी बात न निकलवा सके।"

कन्हाईने कहा—"तो वही नीरद खास्तगीर—"

नरेन्द्रने उसे डाँटकर कहा—"चुप ! आप कहिये राधाकान्त दादा !"

राधाकान्त दादाने कहना शुरू किया—"उस दिन सारे दिन मुझे कितनी यन्त्रणा हुई, वह कहनेकी नहीं। नलिनी गई कहाँ ? सोचते-सोचते सो गया, आँख खुली तो शाम हो गई थी। आँख खोलते ही देखा कि चायकी मेज़पर एक बड़ा लिफ़ाफ़ा रखा है। फ़ौरन समझ गया कि नलिनीकी चिट्ठी है। चिट्ठी खोले बिना ही उठाकर छातीसे लगा ली और एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा कि भगवानने बचा लिया !

उसके बाद बत्ती जलाकर चिट्ठी पढ़ना शुरू किया। बड़े-बड़े कागज़के पाँच पन्ने थे। पहले चार पृष्ठ पढ़ते-पढ़ते मुझे प्रायः पाँच-सात बार आँखें पोंछनी पड़ीं—नलिनीने मेरे प्रेमका जो परिचय पाया था, उसका वर्णन करके उसने कोई दस बार मुझे धन्यवाद दिया था और कृतज्ञता प्रकट की थी—

चिट्ठीको दो-एक बार—खैर, जाने दो! किन्तु अन्तिम पृष्ठ आँखोंके सामने पड़ते ही चौंक पड़ा—यह क्या कभी सम्भव हो सकता है? नलिनी—इसके आगे मैं कुछ न सोच सका, दिमाग़ चक्कर खाने लगा और बेहोश होकर गिर पड़ा।"

कन्हाई और नरेन्द्र चिल्ला उठे—"क्या हुआ अन्तिम पृष्ठपर?"

राधाकान्त दादाने कहा—"मैं मुँहसे नहीं कह सकूँगा। ज़िन्दगीमें कभी काम आयेगा, यह सोचकर मैंने उस अन्तिम पृष्ठको रख छोड़ा है—तुम लोग खुद पढ़ लो।"—कहकर राधाकान्त दादाने मेज़की दराज़ खींचकर फ्रेममें जड़ा हुआ एक काग़ज़ निकालकर दिया।

नरेन्द्रने पढ़ना शुरू किया—"लेकिन एक बात आपसे कहे बिना नहीं रह सकती। आपके अगाध स्नेह और दयाका परिचय मैंने अपनी आँखोंसे ही पा लिया था,—इसलिए आपको थोड़ा सतर्क करना ज़रूरी है। आपकी बुद्धि बहुत सरल है—आप आदमीको पहचान नहीं सकते। मैं अलीपुरकी डकैतीका फरार मुजरिम हूँ। मेरे पीछे बराबर कुत्ते घूमा करते हैं, नहीं तो खुद आकर ज़बानी सब बतलाता। मैं स्त्री नहीं, पुरुष हूँ! जिस लड़केको आपने किताबें दाबे स्कूल जाते देखा है, वह मेरा जुड़वाँ भाई नहीं है, स्वयं मैं ही हूँ। पुलिसकी आँखोंसे बचनेके लिए ही मुझे घरमें लड़की बनकर रहना पड़ता था। सवेरे अंगरेज़ोंके लड़कों-जैसा भेष बनाकर कन्वेन्ट स्कूलकी तरफ जाता था, इसीलिए किसी दिन दोपहरको आप मुझे नहीं देख सके। अब और कुछ सोचनेकी बात नहीं। अगर जीता रहा, तो शायद फिर कभी मिलूँगा। लेकिन एक बात—सच्ची बात—कहता हूँ कि आपकी जो मूर्ति मैंने देखी है, उसे देखकर लड़की होकर जन्म लेनेमें मुझे कोई आपत्ति न होती!"

नरेन्द्रने चिट्ठी पढ़ते ही एक लम्बी साँस छोड़ी और कहा—"ट्रैजेडी !"

कन्हाईने मुसकराकर कहा—"यह तो बड़े मज़ेकी बात है !"

मैंने पूछा—"उसके बाद आपने क्या किया ?"

राधाकान्त दादाने कहा—"जो करना उचित था, अर्थात् जो न करनेसे चलता ही नहीं—विवाह। नलिनीको भूलनेके लिए बागबज़ारके मुकर्जी परिवारकी शशिमुखीकी शरण ली ! वह बेचारी कुछ वर्ष बाद निमतल्लाघाट चली गई—यह तो तुम जानते ही हो। उसके बाद शशिमुखीको भूलनेके लिए भवानीपुरकी मालतीको।"

मैंने कहा—"लेकिन जो भी कहिये राधाकान्त दादा, मालती भाभीके मरनेपर आपका फिर तीसरी बार विवाह करना उचित नहीं हुआ।"

राधाकान्त दादाने कहा—"कोई चारा न था, भाई ! कहा तो कि प्रेम एक नशा है, और विवाह है एक मुद्रादोष,—एक बार अभ्यास पड़ जानेपर फिर छोड़नेका कोई उपाय ही नहीं—उपाय ही नहीं !"

यह कहकर पीछेके खुले हुए दरवाज़ेकी ओर देखकर राधाकान्त दादाने धीरेसे आवाज़ लगाई—"सुनती हो ! चार प्याला चाय तो भेज दो।"